॥ ॐ ॥

भारत माता

ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी महाराज के

राष्ट्रीयता और देशभक्ति-पूर्ण व्याख्यान

प्रकाशक—

श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग

२५, मारवाड़ी गली, लखनऊ.

प्र

विषय-सूची

भूमिका

आज श्रीमन्नारायण स्वामी जी को समाधि लिए हुए दो वर्ष से कुछ ऊपर हो चुके हैं। प्रथम वर्ष में तो सिवाय कुछ हैंड-बिलों के कोई और पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। दूसरे अर्थात् पिछले साल लीग ने तीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

इनमें एक नारायण-चरित्र का प्रथम खंड है, जिसे हमारे सभापति महात्मा शांतिप्रकाशजी ने उर्दू में लिखा है। इसके दूसरे खंड में उनके पत्र और उपदेश प्रकाशित होंगे।

दूसरी पुस्तक अँगरेजी में प्रकाशित हुई है, इसका नाम "Swami Rama, Various aspects of his Life" है। इसमें स्वामी राम के जीवन की भिन्न-भिन्न व्यवसायों पर बड़े-बड़े लेखकों ने प्रकाश डाला है।

तीसरी पुस्तक स्वामी राम के लेख और उपदेशों का चौथा भाग है, जो अँगरेजी की चौथी जिल्द "Cosmic consciousness and how to realize it" का संशोधित हिंदी-अनुवाद है।

इस साल जो पहली पुस्तक प्रकाशित हो रही है, वह "भारत-माता" है। इसमें श्री १०८ स्वामी रामतीर्थजी महाराज के वे सदुपदेश हैं जो उन्होंने भारत के उद्धार के लिये दिये थे। इसके अधिकांश उपदेश अँगरेजी की सातवीं जिल्द से लिए गए हैं। कुछ और उपदेश भी हैं, जो स्वामी राम ने

विदेशों से लौट कर अपने देश में दिये थे। आरंभ में राम की कुछ चुनी हुई अमृत-वाणी हैं। उपदेशों के अनुवाद का श्रीसभापति महोदय ने संशोधन भी कर दिया है। कागज महँगा होने पर भी, बहुत बढ़िया लगा कर पुस्तक को सर्वांगसुंदर बनाया गया है, पर मूल्य केवल १) ही रक्खा गया है।

आशा है, राम-प्यारे इस "भारत-माता" को भारत में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचा देंगे, ताकि प्रत्येक भारत का सपूत राम की आज्ञाओं का पालन करके भारत की दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति करता हुआ उन्नति के शिखर पर जा पहुँचे, और संसार में शांति-राज्य फैलाकर इस कलियुग में सतयुग का प्रादुर्भाव करे।

रामेश्वरसहायसिंह
मंत्री, श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग
लखनऊ.

प्रस्तावना

अब समय आ गया है कि भारत अपनी शताब्दियों की घोर निद्रा से जागे और जागकर ईर्षा-द्वेष और पक्षपात की उस भड़कती हुई अग्नि को, जिसमें सारा संसार जल रहा है, ठंडा कर दे, और संसार में शांति-राज्य अथवा राम-राज्य स्थापित कर दे, जैसा इस समय के महान आत्मा अपने अनुभव से अपनी निम्न-लिखित भविष्य-वाणी में घोषणा कर गये हैं। परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी रामकृष्णजी के विश्वविख्यात शिष्य स्वामी विवेकानंदजी ने यों महानाद किया है—

"The longest night seems to be passing away, the severest trouble seems to be coming to an end, and a voice is coming unto us, gentle, firm, and yet unmistakable in its utterance, and is gaining volume as days pass away. Like a breeze from the Himalayas, it is bringing life into the almost dead bones and muscles, the lethargy is passing away,and only the blind cannot see, or the perverted will not see, that she is awakening, this mother land of ours, from her long slumber of ages gone-by. None can resist her any more, no outward powers can hold her back any more, for the infinite giant is rising to her feet."

अर्थ—बड़ी लंबी रात्रि व्यतीत होती हुई प्रतीत होती है। महान् दुःख दूर होता हुआ अनुभव हो रहा है। एक आकाश-वाणी आ रही है जिसका भाषण सरल, पर दृढ़ और अटल है, और ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों-त्यों यह वाणी गंभीर होती जाती है। हिमालय की मंद-स्पंद वायु मानो हमारी मरती हुई हड्डियों और पुट्ठों में जीवन का संचार कर रही है। आलस्य भागा जा रहा है। हाँ, जो अंधे हैं, वे तो देख ही नहीं सकते हैं, और जो हठी हैं वे देखने ही क्यों लगे। यह हमारी मातृभूमि युग-युगान्तर की घोर निद्रा से जाग पड़ी है, और अब इसे कोई रोक नहीं सकता। कोई भी बाहरी शक्ति इसे पीछे ढकेल नहीं सकती। अनंत शक्तिवाली काली-कराली भारत-माता अब अपने बल-बूते पर खड़ी हो चुकी है।

इधर कैलाश के सिंहासन से ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी भी निम्न-लिखित शंखनाद करते हैं—

"Whether working through many souls or alone, I seriously promise to infuse true life and dispel darkness and weakness from India within ten years; and within the first half of the twentieth century, India will be restored to more than its original glory. Let these words be recorded."

अर्थ—चाहे बहुतों के साथ या इकला।
सत्य जीवन करूँगा मैं पैदा॥
दृढ़ है संकल्प बस यही मेरा।
दूर कर अंधकारो कायरता॥
(हिंद को इंद्रपुर बना दूँगा।)
मैं ये सब दस बरस में कर लूँगा॥

देखना, बीसवीं सदी ही के।
पहले ही अर्धभाग में, समझे॥
हिंद वैभव में, पहले गौरव से।
बढ़के चमकेगा, नोट कर लीजे॥

महापुरुषों की वाणी मिथ्या नहीं होती। आज भारत जाग उठा है। आज उसमें आज़ादी की लहरें हिलोरें ले रही हैं। देश में एक अपूर्व जीवन दिखाई दे रहा है। इस समय प्रत्येक हृदय में ऐसे विचारों और भावों को भर देने की आवश्यकता है, जिनसे रोम-रोम उत्साह और उमंग से भर जाय। इसी विचार से यह संग्रह "भारत-माता" के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है।

इसमें स्वामी राम के वे चुने हुए व्याख्यान हैं, जो राष्ट्रीयता और स्वदेश-प्रीति के भावों से परिपूर्ण हैं। इन व्याख्यानों में पूर्व के गंभीर ज्ञान और पश्चिम के भौतिक विज्ञान का अपूर्व परिदर्शन है। इसमें भारत की उस विकट समस्या का भी हल है, जिसे 'साम्प्रदायिकता' कहा जाता है। स्वामी राम ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से हिंदू-मुसलिम प्रेम का राज-मार्ग दिखा दिया है। इन व्याख्यानों के पढ़ने से हृदय पर जो अनुपम प्रभाव पड़ता है, उसे लेखनी द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।

आशा है, स्वामीराम की यह पावन वाणी पाठकों को नवीन उत्साह से भर देगी और जो लोग इसमें दी हुई आज्ञाओं पर चलेंगे, वे अवश्य संसार में शांति-राज्य स्थापन करने में सहायक होंगे।

शान्तिप्रकाश
सभापति, श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग

श्री स्वामी रामतीर्थ ।

SHRI SWAMI RAMA TIRTHA.

(LAST PHOTO)

DEHRADUN. 1905

भारत माता

स्वामी राम की अमृत-वाणी

१

कोई मनुष्य सर्वेश्वर परमात्मा से अपनी अभेदता तब तक कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि समग्र राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम-रोम में जोश न मारती हो।

२

यह देखकर कि सारा भारतवर्ष प्रत्येक भारतवासी में मूर्तिमान् है, प्रत्येक भारत-सपूत को सम्पूर्ण भारतवर्ष की सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

३

किसी व्यक्तिगत और स्थानीय धर्म को राष्ट्रीय धर्म से ऊँचा स्थान न देना चाहिए। इन धर्मों को ठीक अनुपात से रखना ही सुख लाता है।

४

राष्ट्र के हित के लिये प्रयत्न करना ही विश्व की शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है।

५

परमानंद के अनुभवार्थ आवश्यकता है संन्यास-भाव की

अर्थात् स्वार्थ को नितान्त त्यागकर इस परिच्छिन्न आत्मा को भारत-माता की महान् आत्मा से बिलकुल अभिन्न करने की।

६

परमानंद के अनुभवार्थ आवश्यकता है ब्राह्मण-भाव की अर्थात् राष्ट्र की उन्नति के उपाय सोचने में अपनी बुद्धि समर्पण करने की।

७

परमानंद के अनुभवार्थ आवश्यकता है अपने में क्षत्रिय-भाव रखने की अर्थात् देश के वास्ते प्राण न्योछावर करने के लिये प्रति क्षण तत्पर रहने की।

८

परमानंद के अनुभवार्थ आवश्यकता है अपने में सच्चा वैश्य-भाव रखने की अर्थात् अपने धन को राष्ट्र की धरोहर समझने की।

९

संसार में केवल एक ही रोग है और एक ही ओषधि है। दैवी विधान के आचरण से ही राष्ट्र नीरोग और स्वतंत्र बनाये जा सकते हैं। उसी से मनुष्य देवताओं से अधिक श्रेष्ठ और महात्मा बनाये जा सकते हैं।

१०

अधिकार जमाने का भाव छोड़ने और वेदान्त के संन्यास-भाव को ग्रहण करने में ही राष्ट्रों और व्यक्तियों की मुक्ति निर्भर है, इससे इतर और कोई मार्ग नहीं है।

११

भारत में असंख्य शक्तियों का प्रभाव एक-दूसरे से विपरीत होने के कारण मिट जाता है, और उनका परिणाम

शून्य होता है। क्या यह अफ़सोस की बात नहीं है? इसका कारण क्या है? यही कि प्रत्येक दल अपने पड़ोसियों की त्रुटियों पर ही अपना ध्यान डालता है।

१२

किसी देश में उस समय तक एकता और प्रेम नहीं हो सकते जब तक उस देश के वासी एक-दूसरे के दोषों पर जोर देते रहते हैं।

१३

सफलता-पूर्वक जीवित रहने का रहस्य अपना हृदय मातृवत् बना लेने में है, क्योंकि माता को अपने बच्चे छोटे या बड़े सभी प्यारे लगते हैं।

१४

भारतवर्ष में प्रायः प्रत्येक नगर, नदी, पहाड़ी, पत्थर या पशु की कल्पित मूर्ति बनाई जाकर उसकी प्रतिष्ठा की जाती है, क्या अभी वह समय नहीं आया कि समस्त मातृभूमि को देवी-रूप समझा जाय और उसकी छोटी-से-छोटी प्रतिमा हम में सारे भारतवर्ष की भक्ति भर दे।

१५

आपके निर्माण किये हुए श्वेत ऊँचे मन्दिर और उनमें स्थापित पत्थर के विष्णु आपके हृदय के पाप को शान्त नहीं करेंगे। पूजो, देश के इन भूखे दरिद्रनारायणों और परिश्रम करनेवाले काले विष्णुओं को पूजो।

१६

यज्ञ-कुंड की अग्नि के मुख में बहुमूल्य घी व्यर्थ नष्ट करने के बदले कम-से-कम सूखी रोटी के टुकड़ों को उस जठराग्नि के अर्पण क्यों नहीं कर देते, जो जीवित

किन्तु भूखों मरते करोड़ों नारायणों के हाड़-मांस को खाये जा रही है ?

१७

सर्वोपरि श्रेष्ठ दान जो आप किसी मनुष्य को दे सकते हैं, विद्या वा ज्ञान का दान है। आप किसी मनुष्य को आज भोजन खिला दें, तो कल वह फिर उतना ही भूखा हो जायगा ; किंतु उसको कोई कला (हुनर) सिखा दें, तो आप उसे जीवन पर्यन्त जीविका प्राप्त करने के योग्य बना देते हैं।

१८

भारतवर्ष की दान-शीलता भूखों मरते हुए श्रम-जीवियों (शूद्रों) की कोई अधिक सुध नहीं लेती; वरन् वह ईश्वर के भाण्डार में पाषाणवत् जड़ बने हुए धर्म के उच्च प्रतिनिधियों (ब्राह्मणों) को—पहले ही से पेटभरे आलसियों को—भोजन दिलवाकर दानशील दाताओं को सीधा स्वर्ग (?) में ले जाती है।

१९

दुर्बल-चित्त यात्री, जो मुड़चिरे मुफ़्तख़ोरे आलसियों को धेला-पैसा दे देता है, भले ही अपने को सराह ले कि उसने परलोक में अपनी आत्मा के उद्धार के लिये कुछ कर लिया है। यह बात सही हो या ग़लत, पर इसमें जरा भी संदेह नहीं कि उसने इस समय इस लोक में अपने राष्ट्र के पतन के लिये अवश्य कुछ कर डाला है।

२०

आधी जनता भूखों मर रही है। शेष आधी तो स्पष्ट फ़ुज़ूल-ख़र्ची, आवश्यकता से अधिक सामान, सुगन्ध की बोतलों,

मिथ्या गौरव, ऊपरी प्रभाववाले व्यवहार, समस्त प्रकार के बहुमूल्य व्यर्थ खेलों, कुधान्य और रोग-जनक दिखावे से दबी पड़ी है।

२१

भारतवर्ष का साधारण गृहस्थ सारे राष्ट्र की दशा का नमूना है। बहुत थोड़ी-सी तो आमदनी, प्रतिवर्ष खानेवालों की संख्या में वृद्धि और निरर्थक व दुःखदायी रीति-रस्मों की ग़ुलामी के कारण अनुचित ख़र्च।

२२

भारतीय राजा और रईस अपने सारे बहुमूल्य रत्नों और शक्ति को खोकर पोली झनझनाती हुई उपाधियों और निस्सार निरर्थक नामों से युक्त ग़लीचे के शेर रह गये हैं।

२३

कूड़ा-करकट को घृणा से फेंक देना, मृत पशुओं की हड्डियों को छूने से डरना और मल-मूत्र आदि चीज़ों से बिजकना भारतवर्ष की दरिद्रता का सर्व-प्रधान कारण है।

२४

कुछ लोग ऐसे हैं, जिनके लिये देश-भक्ति का अर्थ केवल भूत-काल के गये-बीते गौरव की निरन्तर डींगें मारना है। ये दिवालिये साहूकार हैं, जो बहुत पुराने बहीखातों पर, जो कि अब व्यर्थ हैं, गहरी देखभाल कर रहे हैं।

२५

भावी नवयुवक सुधारक ! तू भारतवर्ष की प्राचीन रीतियों और परमार्थ-निष्ठा की निन्दा मत कर। इस प्रकार विरोध का एक नया बीज बो देने से भारतवर्ष के मनुष्य एकता को प्राप्त नहीं कर सकते।

२६

तुच्छ अहंकार को त्यागकर और समस्त देश का रूप होकर यदि आप कुछ महसूस करें, तो आपका देश आपके साथ महसूस करने लगेगा। आप आगे बढ़ें, तो आपका देश आपके पीछे चलने लगेगा।

२७

उन्नति का बीज-मंत्र सेवा और प्रेम है, न कि आज्ञा और बल-प्रयोग।

२८

वही मनुष्य नेता बनने के योग्य होता है, जो अपने सहायकों की मूर्खता, अपने अनुगामियों के विश्वासघात, मानव-जाति की कृतघ्नता और जनता की गुण-ग्रहण-हीनता की कभी शिकायत नहीं करता।

२९

किसी देश की उन्नति छोटे विचार के बड़े आदमियों पर नहीं, किन्तु बड़े विचार के छोटे आदमियों पर निर्भर है।

३०

प्रत्येक मनुष्य को अपना स्थान स्वयं निर्धारित करने के लिये पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। मस्तक चाहे जितना ऊँचा रहे, पर सब के पैर सदा समतल भूमि पर ही रहें। कभी किसी के कन्धे पर पैर रखकर ऊँचे मत बनो, चाहे वह निर्बल या राज़ी ही क्यों न हो।

३१

वे ढोंगी राजनीतिज्ञ हैं, जो स्वतन्त्रता और प्रेम के भाव को लाये बिना ही राष्ट्र की उन्नति करना चाहते हैं।

३२

अमेरिका और योरप का उत्थान ईसा के व्यक्तित्व के कारण

नहीं है; वहाँ की उन्नति का असली कारण अज्ञात-रूप से वेदान्त को आचरण में लाना है। भारतवर्ष का पतन आचरण में वेदान्त के न रहने के कारण हुआ है।

३३

विदेशी राजनीतिज्ञों से बचने का एक-मात्र उपाय आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विधान अर्थात् अपने पड़ोसी से प्रेम करने के नियम का अपने जीवन में चरितार्थ करना है।

३४

अपने आपको ईश्वर के ख़ुफ़िया पुलीस का सदस्य बनाकर शुद्धता या अशुद्धता के नाम पर हमें क्या अधिकार है कि हम ऐसे मनुष्य के प्राइवेट चाल-चलन की ताक-झाँक करें, जिसका सामाजिक जीवन देश के लिये हितकर हो।

३५

हिन्दू लोगों में हमको नुक़्ताचीनी नहीं, किन्तु गुण-ग्रहण का भाव, भ्रातृत्व की भावना, समन्वय की बुद्धि, धर्मों व कार्यों का यथायोग्य अधिकार और श्रम की महिमा को जाग्रत करना है।

३६

यदि विदेशों में अपना निर्वाह करने के सिवा तुम अपने देश के लिये कुछ नहीं कर सकते, तो वहीं रहो और यदि तुम्हें भारत-माता की दुखती हुई छाती पर रेंगती हुई जोंक बनना पड़े, तो अरब-सागर में कूद पड़ो।

३७

भारत के भक्तो! उस मधुर-मुख ग्वाले (भगवान् कृष्ण) के तुम प्यारे प्रेम-पात्र बन जाओगे जब तुम दिव्य प्रेम के साथ चांडाल में, चोर में, पापी में, अभ्यागत में और सब में

उस प्रभु के दर्शन करोगे और उस प्रभु को केवल पत्थर की मूर्ति ही में परिमित न रहने दोगे।

३८

ग़ल्ती से जिनको तुम 'पतित' कहते हो, वे वे हैं जो 'अभी उठे नहीं' हैं। वे उसी प्रकार से विश्वविद्यालय के नव-आगन्तुक विद्यार्थी हैं, जिस प्रकार किसी समय तुम भी थे।

३६

मेरे प्यारे हिंदुओं! परिवर्तन से अथवा समय-अनुकूल बनने से घृणा करके और पुरानी रीतियों तथा वंश-परम्परा पर अत्यंत जोर देकर अपने को मनुष्यता के आसन से नीचे मत गिराओ।

४०

यदि आप नई रोशनी को, जो आप ही के देश की पुरानी और प्राचीन रोशनी है, ग्रहण करने को राज़ी और तैयार नहीं हो, तो जाओ और पितृलोक में पूर्व-पुरुषों के साथ निवास करो। यहाँ ठहरने का क्या काम है? प्रणाम!

४१

सत्य का अध्यास शक्ति और विजय लाता है; चर्म का अध्यास (चाहे वह ब्राह्मणत्व का अध्यास हो अथवा संन्यासपने का) तुम्हें चमार बना देता है।

४२

किसी धर्म को इसलिये अंगीकार मत करो कि वह सब से प्राचीन है। सब से प्राचीन होना उसके सच्चे होने का प्रमाण नहीं है। कभी-कभी पुराने-से-पुराने घरों को गिराना उचित होता है और पुराने वस्त्र अवश्य बदलने पड़ते हैं। यदि कोई नये से नया मार्ग वा रीति विवेक की कसौटी पर खरी

उतरे, तो वह उस ताज़े गुलाब के फूल के सदृश उत्तम है, जिस पर चमकती हुई ओस के कण शोभायमान हो रहे हैं।

४३

किसी धर्म को इसलिये स्वीकार मत करो कि वह सबसे नया है। सब से नई चीज़ें समय की कसौटी से न परखी जाने के कारण सर्वथा सर्वश्रेष्ठ नहीं होतीं।

४४

किसी धर्म को इसलिये स्वीकार मत करो कि उस पर विपुल जन-संख्या का विश्वास है; क्योंकि विपुल जन-संख्या का विश्वास तो वास्तव में शैतान अर्थात् अज्ञान के धर्म पर होता है। एक समय था, जब विपुल जन-संख्या गुलामी की प्रथा को स्वीकार करती थी, परन्तु यह बात गुलामी की प्रथा के उचित होने का कोई प्रमाण नहीं हो सकती।

४५

किसी धर्म को इसलिये स्वीकार मत करो कि उस पर चलने-वाले कुछ थोड़े-से चुने हुए लोग हैं; क्योंकि कभी-कभी यह थोड़ी संख्या, जो किसी धर्म को स्वीकार करती है, अंधकार और भ्रांति में होती है।

४६

किसी धर्म को इसलिये अंगीकार मत करो कि उसका प्रवर्तक त्याग-मूर्ति है; क्योंकि ऐसे बहुत त्यागी हैं, जिन्होंने सब कुछ त्याग दिया है, पर जानते कुछ भी नहीं, और वस्तुतः वे धर्मोन्मादी हैं।

४७

किसी धर्म को इसलिये अंगीकार मत करो कि वह राजों और महाराजों द्वारा प्राप्त हुआ है। राजा लोगों में प्रायः आध्यात्मिक धन का पूरा अभाव रहता है।

४८

किसी धर्म को इसलिये अंगीकार मत करो कि वह ऐसे मनुष्य का चलाया हुआ है, जिसका चरित्र परम श्रेष्ठ है। अनेकशः परम श्रेष्ठ चरित्र के लोग सत्य का निरूपण करने में असफल रहे हैं। हो सकता है, किसी मनुष्य की पाचन-शक्ति असाधारण रूप से प्रबल हो, तो भी उसे पाचन-क्रिया का कुछ भी ज्ञान न हो। यह एक चित्रकार है जो कला-चातुर्य का एक मनोहर, उत्कृष्ट और अत्युत्तम नमूना दिखलाता है, परन्तु यही चित्रकार शायद संसार-भर में अत्यन्त कुरूप हो। ऐसे भी लोग हैं, जो अत्यन्त कुरूप होते हैं, पर तो भी वे सुन्दर सत्यों का निरूपण करते हैं। सुक़रात इसी प्रकार का मनुष्य था।

४९

जिस किसी चीज़ को स्वीकार करो या ज़िस किसी धर्म पर विश्वास करो, तो उसकी निजी श्रेष्ठता के ही कारण करो। उसकी स्वयं जाँच-पड़ताल करो, खूब छान-बीन करो।

५०

सत्य धर्म का मतलब 'ईश्वर' शब्द पर विश्वास की अपेक्षा भलाई पर विश्वास करना है।

५१

किसी भी मत या धर्म को, जो आजकल के पदार्थविद्या-संबंधी अन्वेषण के नीरोग और शिष्ट परिणामों के साथ मेल नहीं खाता, किंचित् अधिकार नहीं है कि वह अपने मूर्ख भक्तों पर जबरदस्ती करे या उन्हें अपना शिकार बनावे।

५२

भोलेभाले लड़के और लड़कियों पर धार्मिक विश्वास बल-पूर्वक ठूँसने से आध्यात्मिक दरिद्रता आ जाती है।

५३

व्यक्ति, रूप, मान, पद, धन, विद्या और आकार का सत्कार करना मूर्ति-पूजन है।

५४

वह चौका-धर्म, जो अपरिमित और अमर आत्मा को विदेशियों के शोरबे से बिगड़ने देता है, सचमुच ही निन्दनीय है।

५५

सफलता का रहस्य वेदान्त को व्यवहार में लाना है। व्यावहारिक वेदान्त ही सफलता की कुंजी है।

५६

उपनिषदों और वेदान्त की पवित्र शिक्षाओं की जगह एक प्रकार के चौका-धर्म ने ले ली है अर्थात् भोजन और भोजन करने की विधि पर, ज़रूरत से कहीं ज्यादा ज़ोर दिया जाता है। वाह रे पागलपन !

५७

उपवास तो केवल सहायतार्थ किया जाना चाहिए, परन्तु उसका हम पर आधिपत्य न होना चाहिए। लोग प्रायः उपवास इसलिये करते हैं कि वे उसके लिये विवश किये जाते हैं। उस समय वे उपवास-रूपी दासता के दास बन जाते हैं। उपवास का अर्थ अपने को सारी स्वार्थ-युक्त कामनाओं से रहित कर देना है; उनको पोषण करना नहीं।

५८

दान के उचित-अनुचित होने का निर्णय दान करनेवाले के अभिप्राय से नहीं, वरन् दान के फल से किया जाना चाहिए।

५९

यदि हम एक दिन हज़ारों भूखों को भी भोजन करा दें, तो

उससे क्या लाभ ? इस प्रकार का विवेक-हीन दान भलेमानुस दरिद्रों के उत्पन्न करने में सहायता देता है।

६०

'यज्ञ वा होम से विपत्ति टलती है', यह कहावत आज भी उतनी ही सच्ची है जितनी प्राचीन पुण्य-काल में थी, किन्तु भेद केवल इतना है कि यह यज्ञ केवल निर्दोष जीवों का नहीं, वल्कि प्रेम की वेदी पर अपनी दलबन्दी की वृत्ति अर्थात् जाति-भेद तथा ईर्षा के भावों का वलिदान करना है, जो हमें इसी संसार में स्वर्ग ला देता है।

६१

भूतकाल के महापूज्य ऋषियों और मुनियों की आँखों से झाँकते रहने की अपेक्षा हमें अपनी ही आँखों द्वारा देखना और अपनी समस्याओं को स्वयं ही हल करना है।

६२

प्रकृति में परमात्मा को प्रकृति-रूप से देखो, वल्कि उससे भी बढ़कर तुम उसे रसायन की प्रयोगशाला और विज्ञान-भवन में देखो। तुम्हारे लिये रसायनज्ञ की मेज़ यज्ञाग्नि के समान पवित्र होनी चाहिए।

६३

समग्र संसार के धर्म-ग्रन्थों को उसी भाव से ग्रहण करना चाहिए, जिस प्रकार रसायन-शास्त्र का हम अध्ययन करते हैं, और अपने अनुभव के अनुसार अन्तिम निश्चय पर पहुँचते हैं।

६४

शौच के समय मनुष्य को कितनी कुल्ली करना चाहिए, इस प्रकार के तुच्छ प्रश्नों पर वाद-विवाद करने में वहुत-से युवकों की मानसिक शक्तियाँ नष्ट की जाती हैं।

६५

आप अपनी शक्ति को उत्तम विषयों की ओर लगने दीजिए, तब आपके पास विषय-वासना के विचार करने का भी समय न रहेगा।

६६

जब तक पत्नी पति का वास्तविक हित करने को तत्पर नहीं होगी और पति पत्नी की कुशल-क्षेम की वृद्धि के लिये उद्यत न होगा, तब तक धर्म की उन्नति नहीं हो सकती ; फिर धर्म के लिये कोई आशा नहीं है।

६७

भय से और दंड से पाप कभी बंद नहीं होते।

६८

लोग चाहे आपसे भिन्न-मत हों, चाहे आप पर नाना प्रकार की कठिनाइयाँ डालें, चाहे आपको बदनाम करें, पर उनकी कृपा तथा कोप, उनकी धमकियों तथा प्रतिज्ञाओं के होते हुए भी आपके मन-रूपी सरोवर से दिव्य, अनन्त रूप से पवित्र, मीठे जल की धारा के अतिरिक्त और कुछ निकलना ही नहीं चाहिए। आपके अन्दर से अमृत का प्रवाह बहना चाहिए, जिससे आप के लिये बुरी बातों का सोचना उसी प्रकार असम्भव हो जाय, जिस प्रकार स्रोत के शुद्ध और ताज़ा जल के लिये अपने पीने-वालों को विष दे देना असंभव हो जाता है।

६९

यह एक दैवी विधान है, जिसकी कोनों-कोनों तथा बाज़ारों-बाज़ारों में घोषणा कर देना चाहिए कि "तुम ईश्वर की आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न करोगे, तो तुम स्वयं अन्धे हो जाओगे।"

७०

चाहे आप किसी एकान्त गुफा में कोई पाप करें, आप बिना किसी विलम्ब के यह देखकर चकित होंगे कि आपके पैरों तले की ज़मीन आपके विरुद्ध साक्षी देती है, आप बिना किसी विलम्ब के देखेंगे कि उन्हीं दीवारों और उन्हीं वृक्षों के ज़बान है और वे बोलते हैं। आप प्रकृति को धोखा नहीं दे सकते। यह एक सत्य है और यह एक दैवी विधान है।

७१

दूसरों के प्रति आपका क्या कर्तव्य है? जब और लोग बीमार पड़ें, तो उनको अपने पास ले आओ और जिस प्रकार अपने शरीर के घावों की आप सुश्रूषा करते हैं, उसी प्रकार उन घावों को अपना ही समझकर आप उनकी मरहम-पट्टी करो।

७२

वह मनुष्य जो अपने संगी से घृणा करता है, उसी मनुष्य के समान हत्यारा है जिसने यथार्थ में हत्या की हो।

७३

जो दर्शन-शास्त्र प्रकृति में होनेवाले सब तथ्यों की व्याख्या नहीं करता, वह दर्शन-शास्त्र ही नहीं है।

७४

सत्य किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है; सत्य ईसा की जागीर नहीं है; हमें ईसा के नाम से सत्य का प्रचार करना नहीं है। यह सत्य कृष्ण अथवा किसी भी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है, बल्कि यह प्रत्येक व्यक्ति की सम्पत्ति है।

७५

यदि सत्य के लिये आपको अपना शरीर भी त्यागना पड़े, तो सानंद त्याग दीजिए। यही अन्तिम ममता है, जो भंग होती है।

७६

लोग तथा अन्य वस्तुएँ तभी तक हमें प्यारी लगती हैं, जब तक वे हमारा स्वार्थ सिद्ध करती हैं तथा हमारा काम निकालती हैं। जिस क्षण हमारा स्वार्थ सिद्ध होने में वे बाधक होती हैं, उसी क्षण हम सब कुछ त्याग देते हैं।

७७

बच्चे के लिये बच्चा प्यारा नहीं होता, किन्तु अपने लिये वह प्यारा होता है। पत्नी के लिये पत्नी प्यारी नहीं होती, किन्तु अपने लिये पत्नी प्यारी होती है। ऐसे ही पति के लिये पति प्यारा नहीं होता, बल्कि अपने लिये पति प्यारा होता है। यही तत्त्व वा दैवी विधान है।

७८

कोई भी आपके पास आवे, ईश्वर समझकर उसका स्वागत करो, परन्तु उस समय साथ-साथ अपने को भी अधम मत समझो। यदि आज आप जेलखाने में हों, तो कल आप प्रताप-वान् हो सकते हो।

७९

जिस समय मनुष्य विश्व-आत्मा को अपनी निजी आत्मा अनुभव करता है, तो सारा विश्व उसके शरीर के समान उसकी सेवा करता है।

८०

अपने चित्त को शान्त रक्खो, अपने मन को शुद्ध विचारों से भर दो, और कोई भी मनुष्य आपके विरुद्ध नहीं हो सकता। यही दैवी विधान है।

८१

दैवी विधान यह है कि मनुष्य आराम-चैन से तथा विक्षेप-

रहित रहे और उसका शरीर सदैव हरकत करता रहे। उसका मन स्थित-विद्या के आधीन रहे और तन गति-विद्या के। शरीर तो काम में लगा रहे और अंतरात्मा सदैव आराम में।

८२

वेदान्त आपसे यह मनवाना चाहता है कि दान देने में आनन्द है, लेने में नहीं।

८३

अलमारियों में बंद वेदान्त की पुस्तकों से काम न चलेगा, तुम्हें उसको आचरण में लाना होगा।

८४

यदि वेदान्त आपकी निर्बलता को दूर नहीं करता, यदि वह आपको प्रसन्न नहीं रखता, यदि वह आपके बोझों को परे नहीं हटाता, तो उसे ठुकराकर अलग फेंक दो।

८५

वेदान्त-दर्शन के प्रचार का सर्वोत्तम मार्ग उसे अपने आचरण में लाना है, अन्य कोई भी सुगम मार्ग नहीं है।

८६

वेदान्त चाहता है कि आप काम को काम की ख़ातिर करें। फल के लिये नहीं।

८७

तन को काम में और मन को प्रेम और राम में रखने का अर्थ इसी जन्म में दुःख और पाप से मुक्ति पाना है।

८८

शरीर और मन निरन्तर काम में इस हद तक प्रवृत्त रहें कि परिश्रम बिलकुल ही जान न पड़े।

८९

जहाँ कहीं भी तुम हो, दानी की हैसियत से काम करो; भिक्षुक की हैसियत से कदापि न करो, ताकि आपका काम विश्व-व्यापी हो और किंचित्-मात्र भी व्यक्तिगत न हो।

९०

संसारी मनुष्य के लिये निरन्तर कर्म तथा निरन्तर परिश्रम ही सब से महान् योग है। संसार के लिये तभी आप सब से महान् कार्यकर्ता हैं, जब आप अपने लिये काम नहीं करते।

९१

वह हमारी स्वार्थ-पूर्ण चंचलता है, जो सारा काम बिगाड़ देती है।

९२

शब्दों की अपेक्षा कर्म अधिक पुकार-पुकारकर उपदेश देते हैं।

९३

परिणाम और नतीजा मेरे लिये कुछ नहीं है, सफलता अथवा असफलता मेरे लिये कुछ नहीं है। मुझे काम जरूर करना चाहिए, क्योंकि मुझे काम प्यारा लगता है। मुझे काम काम के लिये ही करना चाहिए। काम करना मेरा उद्देश्य वा लक्ष्य है, कर्म में प्रवृत्त रहना ही मेरा जीवन है। मेरा स्वरूप, मेरी असली आत्मा स्वयं शक्ति है। मैं अवश्य काम करूँगा।

९४

सदा स्वतन्त्र कार्यकर्ता और दाता बनो। अपने चित्त को कभी भी याचक तथा आकांक्षी की दशा में न डालो। सर्वेसर्वा बनने के स्वभाव से पल्ला छुड़ाओ।

९५

अपनी विद्वत्ता दर्शाने के लिये बड़े-बड़े और लम्बे लम्बे

वाक्य वा श्लोक उद्धृत करने की योग्यता और वाक्यों तथा प्राचीन धर्म-ग्रन्थों के भाव तोड़ने-मोड़ने के लिये व्यर्थ बाल की खाल निकालने की शक्ति तथा ऐसे विषयों का अध्ययन जिनका हमें अपने जीवन में कभी व्यवहार नहीं करना है, यह शिक्षा नहीं है।

९६

सच्ची शिक्षा का असली उद्देश्य लोगों से ठीक बातें कराना ही नहीं, बल्कि ठीक बातों के करने में आनन्द अनुभव कराना है, केवल परिश्रमी बनाना ही नहीं, बल्कि परिश्रम में प्रेम अनुभव कराना है।

९७

यदि शिक्षा मुझे स्वतंत्रता तथा मोक्ष की प्राप्ति नहीं करा देती, तो उसे धिक्कार है। उसे दूर कर दो, मुझे उसकी आवश्यकता नहीं। यदि विद्या मुझे बन्धन में रखती है, तो मुझे ऐसी विद्या से कोई प्रयोजन नहीं।

९८

मनुष्य में भाव जितने बुद्धि वा विवेक के अधीन होते हैं; उतना ही वह पशुओं से श्रेष्ठ माना जाता है।

९९

चिमटा प्रायः और सब चीजों को पकड़ सकता है, परन्तु वह पीछे लौटकर उन्हीं उँगलियों को, जो उसे पकड़े हुए हैं, किस प्रकार पकड़ सकता है? इसी प्रकार मन अथवा बुद्धि से उस महान् अज्ञेय को, जो स्वयं उसी का आदि-मूल है, जानने की किसी प्रकार भी आशा नहीं की जा सकती।

१००

मनुष्य अपने भाग्य का विधाता आप है।

१०१

यदि कोई मनुष्य मुझे अपने मत को एक शब्द में प्रकट करने को कहे, तो मैं कहूँगा कि वह 'आत्म-विश्वास' वा 'आत्म-ज्ञान' है।

१०२

विशाल संसार मेरा घर है, और उपकार करना मेरा धर्म है।

१०३

ईसाई, हिंदू, पारसी, आर्यसमाजी, सिक्ख, मुसलमान और वे लोग जिनके पुट्ठे, हड्डियाँ तथा मस्तिष्क मेरी प्यारी इष्टदेवी भारत-भूमि के अन्न और नमक खाने से बने हैं, वे मेरे भाई हैं, नहीं-नहीं, मेरा अपना आप हैं। उनसे कह दो कि मैं उनका हूँ! मैं सबको हृदय से लगाता हूँ, किसी को अलग नहीं करता। मैं प्रेम-रूप हूँ। प्रकाश के समान प्रेम प्रत्येक पदार्थ को, सबको प्रकाश की किरणों से मढ़ देता है। ठीक और अवश्य ही मैं प्रेम के प्रताप की बाढ़ हूँ। मैं सबसे प्रेम करता हूँ।

१०४

पूर्ण स्वस्थ व निरन्तर काम में प्रवृत्त रहने का रहस्य चित्त को सदा हल्का और प्रसन्न रखने में है; चित्त को कभी भी थका-माँदा, कभी भी उत्तेजित, कभी भी भय, शोक व चिंता से लदा हुआ रखने में नहीं है।

१०५

लोकाचार के दलदल में फँसे रहना, अपने को रीति-रिवाज की धारा में बहने देना, किसी जड़ वस्तु की तरह नाम-रूप के कुएँ में डूब जाना, संपत्ति के सरोवर में ग़ोते खाना और उस समय को जिसे ईश्वर-प्राप्ति में व्यय करना चाहिए था, रुपया

कमाने में लगाना, और फिर भी इसे 'परोपकार' कहना, क्या यह जड़ता या अकर्मण्यता नहीं है ?

१०६

अपना केंद्र अपने से बाहर मत रक्खो; यह आपका पतन कर देगा। अपने में अपना पूर्ण विश्वास रक्खो, अपने केंद्र पर डटे रहो ; कोई चीज़ तुम्हें हिला तक न सकेगी।

१०७

जो मनुष्य स्वेच्छापूर्वक सत्य की सूली पर अपना बलिदान कर देता है, उसके लिये यह संसार स्वर्गीय नंदन-वन है। बाक़ी सबके लिये रौरव नरक है।

१०८

दुनिया ! हट, दूर, परे हो। जागो ! उठो, स्वतंत्र हो ! आज़ादी ! आज़ादी ! आज़ादी !!

ॐ !   ॐ !!   ॐ !!!

ब्रह्मचर्य

(ता० ६ सितंबर १६०५ ई० को फ़ैज़ाबाद में दिया हुआ व्याख्यान)

जे नर राम-नाम लिव नाहीं,
वे नर खर कूकर शूकर सम वृथा जिये जग माँहीं ।

× × ×

तुझे देखें तो फिर औरों को किन आँखों से हम देखें ;
ये आँखें फूट जायें गर्चि इन आँखों से हम देखें ।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

जीता तो वही है, जो सत् में, नारायण में, राम में रहता-सहता, चलता-फिरता और श्वास लेता है । ज़िन्दगी तो यही है। आप कहेंगे कि तुम बस आनन्द ही आनन्द बोलते हो, संसार के काम-काज कैसे होंगे और दुख-दर्द कैसे मिटेंगे ? परन्तु—

हरजा कि सुल्ताँ ख़ीमा ज़द ग़ौग़ा न मानद आम रा ।

अर्थ—जिस स्थान पर राजाधिराज ने डेरा डाला, वहाँ साधारण लोगों का गुल-गपाड़ा न रहा ।

जहाँ पर सत्, प्रेम और नारायण का निवास है, वहाँ शोक, मोह, दुःख, दर्द आदि का क्या काम ? क्या राजा के ख़ेमे के सामने कोई लुंडी-बुच्ची फटक सकती है ? सूर्य जिस समय उदय हो जाता है, तो कोई भी सोया नहीं रहता । पशुओं की भी आँखें खुल जाती हैं, नदियाँ जो बर्फ़ों की चादरें ओढ़े पड़ी थीं, उन चादरों को फेंककर चल पड़ती हैं। इसी प्रकार सूर्यों का सूर्य आत्मदेव जब आपके हृदय में निवास

करता है, तो वहाँ शोक, मोह और दुःख कैसे ठहर सकते हैं? कभी नहीं, कदापि नहीं। दीपक जल पड़ने से पतंगे आप ही आप उसके आस-पास आने शुरू हो जाते हैं। चश्मा जहाँ वह निकलता है, प्यास बुझानेवाले वहाँ स्वयं जाने लग पड़ते हैं। फूल जहाँ खिल पड़ा, भौंरे आप ही आप उधर खिंचकर चले आते हैं। इसी प्रकार जिस देश में धर्म (ईश्वर का नाम) रोशन हो जाता है, तो संसार के सर्वोत्तम पदार्थ, वैभव आप ही खिंचे हुए उस देश में चले आते हैं। यही क़ुदरत का क़ानून है, यही प्रकृति का नियम है। ॐ! ॐ!! ॐ!!!

बेशक, राम को आनन्द के अतिरिक्त और बात नहीं आती। बादशाह का ख़ीमा लग जाने पर जैसे चोर-चकार नहीं आने पाते, इसी तरह आनन्द का डेरा जम जाने से शोक और दुःख ठहर नहीं सकते। इसलिये आनन्द के सिवा राम से और क्या निकले? ॐ आनन्द! आनन्द!!

लेकिन आनन्द का डेरा डालने से पहले जमीन का साफ़ कर लेना भी जरूरी है। इसलिये आज राम, जिसके यहाँ आनन्द की बादशाहत के सिवा कुछ और है ही नहीं, झाड़ू लेकर झाड़ने-बुहारने का काम कर रहा है। जिस तरह दूध या किसी और अच्छी चीज़ को रखने के लिये बरतन का साफ़ कर लेना ज़रूरी है, इसी तरह आनन्द को हृदय में रखने के लिये हृदय का साफ़ कर लेना भी आवश्यक है। सो आज राम इस सफ़ाई का यत्न बतायेगा। लोग कहते हैं कि घी खाने से शक्ति आती है, मगर जब तक ज्वर दूर न हो जाय, घी हानिकारक ही है। कड़वी कुनैन या चिरायता या गुरुच खाये बिना ज्वर दूर न होगा अर्थात् जब तक मन पवित्र और शुद्ध न होगा, ज्ञान का रंग कदापि न चढ़ेगा।

ओरा ब चश्मे-पाक तवाँ दीद चूँ हिलाल;

हर दीदा जल्वगाहे आँ माह पारा नेस्त।

अर्थ—पवित्र आँख से तू उस प्रियतम को द्वितीया के चन्द्रोदय के समान देख सकता है, परन्तु हरएक आँख उस चन्द्रमुखी के दर्शन नहीं कर सकती।

जब राम पहाड़ों पर था, तो उसने एक दिन एक मनुष्य को देखा कि गुलाब का एक सुन्दर फूल नाक तक ले गया और चिल्ला उठा। उसमें क्या था? उस सुन्दर फूल में एक मधु-मक्खी बैठी थी, जिसने उस पुरुष की नाक की नोक में एक डंक मारा। इसी कारण वह चिल्ला उठा, दर्द से व्याकुल हो गया और पुष्प हाथ से गिर पड़ा। इसी तरह समस्त कामनायें और विषय-वासनायें देखने में उस गुलाब के फूल की तरह सुन्दर और मनोहर प्रतीत होती हैं, किन्तु उनके भीतर वास्तव में एक विषैली भिड़ बैठी है, जो डंक मारे बिना न रहेगी। आप समझते हैं कि हम सुन्दर-सुन्दर फूलों (संसार के पदार्थों) और भोग-विलासों को भोग रहे हैं, किन्तु वास्तव में वह विष, जो उनके अन्दर है, आपको भोगे बिना न रहेगा। संसार के लोग जिसको मज़ा या स्वाद कहते हैं, वह अपना ज़हरीला असर यहाँ किये बिना भला कब रह सकता है?

हाय! आज भीष्म के देश में ब्रह्मचर्य पर दो बातें कहनी पड़ती हैं। भीष्म को ब्रह्मचर्य तोड़ने के लिये ऋषि, मुनि और सौतेली माँ, जिसके लिये उसने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली थी, उपदेश करती है कि तुम ब्रह्मचर्य तोड़ दो। वज़ीर, अमीर, ऋषि-मुनि सब आग्रह करते हैं कि तुम ब्रह्मचर्य को तोड़ दो। तुम्हारे विवाह करने से तुम्हारा वंश बना रहेगा, राज बना

रहेगा। इत्यादि-इत्यादि। किन्तु नवयुवक भीष्म यौवनावस्था के आरम्भ में, जिस समय विरला ही कोई ऐसा युवक होता है, जिसका मन बाह्य सौन्दर्य और चित्ताकर्षक छवि के झूठे जाल में न फँसता हो, यौवन-पूर्ण भीष्म, शूरवीर भीष्म यों उत्तर देता है—"तीनों लोकों को त्याग देना, स्वर्ग का साम्राज्य छोड़ देना और इनसे भी कुछ बढ़कर हो तो उसे न लेना मंजूर है; परन्तु सत् से विमुख होना स्वीकार न करूँगा। चाहे पृथिवी अपने गुण (गन्ध) को, जल अपने स्वभाव (रस-स्वाद) को, प्रकाश अपने गुण (भिन्न-भिन्न रंगों के दिखलाने) को, वायु अपने गुण (स्पर्श) को, सूर्य अपने प्रकाश को, अग्नि अपनी उष्णता को, चन्द्र अपनी शीतलता को, आकाश अपने धर्म शब्द को, इन्द्र अपने वैभव को, और यमराज न्याय को छोड़ दें, परन्तु मैं सत्य को कदापि न छोड़ूँगा।"

हनुमान् का नाम लेने और ध्यान करने से लोगों में शौर्य और वीरता आ जाती है। हनुमान् को महावीर किसने बनाया? इसी ब्रह्मचर्य ने। मेघनाद को मारने की किसी में शक्ति न थी। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र ने भी यह मर्यादा दिखलाई कि मैं स्वयं राम हूँ, किन्तु मैं भी मेघनाद को नहीं मार सकता। उसको वही मार सकेगा जिसके अन्तःकरण में बारह वर्ष तक किसी प्रकार का अपवित्र विचार न आया हो, और वह लक्ष्मणजी थे। जिन-जिन लोगों ने पवित्रता को छोड़ा, उनकी स्थिति खराब होने लगी। उस मनुष्य की जय कभी नहीं हो सकती, जिसका हृदय पवित्र नहीं है। पृथिवीराज जब उस रण-क्षेत्र को चला, जिसके बाद ही हिंदुओं की गुलामी शुरू हो गई, तो लिखा है कि चलते समय वह अपनी कमर महारानी से कसवाकर आया था। नेपोलियन-जैसा युद्ध-वीर जब अपनी उन्नति के शिखर से

गिरा, अड़ड़ड़ धम, तो लिखा है कि जाने से पहले ही वह अपना खून, अपना घात, आप कर चुका था। खून क्या लाल ही होता है? नहीं-नहीं, सफ़ेद भी होता है। उस रण-क्षेत्र से पहली शाम को वह एक चाह में अपने तईं पहले ही गिरा चुका था। अभिमन्यु कुमार-जैसा चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य के समान तेजस्वी, अपूर्व नवयुवक जब उस कुरुक्षेत्र की भूमि के अर्पण हुआ और उस युद्ध में काम आया, जहाँ से भारत के क्षत्री शूरवीरों का बीज उड़ गया, तो युद्ध से पहले वह (अभिमन्यु) क्षत्रिय-वंश का बीज डालकर आ रहा था। राम जब प्रोफ़ेसर था, उसने उत्तीर्ण और अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की नामावली बनाई थी और उनके भीतर की दशा और आचरण से यह परिणाम निकाला था कि जो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों या उसके कुछ दिनों पहले विषयों में फँस जाते थे, वे परीक्षा में प्रायः असफल होते थे, चाहे वे वर्ष भर श्रेणी में अच्छे ही क्यों न रहे हों; और वे विद्यार्थी, जिनका चित्त परीक्षा के दिनों में एकाग्र और शुद्ध रहा करता था, उत्तीर्ण और सफल होते थे। बाइबिल में शूरवीरता में अतिप्रसिद्ध सैम्सन (Samson) का दृष्टान्त आया है। जब उसने स्त्रियों के नेत्रों की विषमयी मदिरा को चक्खा, तो उसकी समस्त वीरता और शौर्य को उड़ते जरा देर न लगी। एक वीर-नर ने कहा है—

"My strength is as the strength of ten,
Because my heart is pure.
I never felt the kiss of love,
Nor maiden's hand in mine."

—TENNYSON.

अर्थ—दस नवयुवकों की मुझमें शक्ति है, क्योंकि मेरा हृदय पवित्र है। कामासक्त होकर न तो मैंने कभी प्रेम के चुम्बन का अनुभव किया और न किसी तरुणी के कोमल कर-स्पर्श का।

जैसे तेल बत्ती के ऊपर चढ़ता हुआ प्रकाश में बदल जाता है, वैसे ही जिस शक्ति की अधोमुखी गति है, यदि वह ऊपर की तरफ़ बहने लग पड़े, अर्थात् ऊर्ध्वरेतस् बन जाय, तो विषय-वासना-रूपी बल ओजस् और परमानन्द में बदल जाता है। अर्थशास्त्र में बहुधा लोगों ने पढ़ा होगा कि किसी देश में जन-संख्या का बढ़ जाना और समृद्धि का स्थायी रहना एक ही समय में असंभव और एक-दूसरे के विरुद्ध हैं। पदार्थविद्या-वेत्ताओं की परीक्षा से भी यह सिद्धान्त स्पष्ट सिद्ध होता है। अगर बाग़ीचे में निराई और पेड़ों की काट-छाँट न की जाय, तो थोड़े ही दिनों में बाग़ वन हो जायगा, सब रास्ते बन्द। इसी तरह राष्ट्रीय शान्ति और वैभव को स्थिर रखने के लिये नैतिक पद्धति (Ethical process), जिसको हक्सले ने उद्यान-पद्धति से उपमा दी है, बर्ताव में लाना पड़ता है अर्थात् लोक-संख्या को किसी विशिष्ट मर्यादा से अधिक न बढ़ने देना उचित होता है, चाहे यह विदेश-गमन से प्राप्त हो, चाहे संतान के कम पैदा करने से। जब सीधी तरह कोई बात समझ में नहीं आती, तो डंडे के ज़ोर से सिखाई जाती है। सभ्यता-हीन लोगों में पहले पशुओं की तरह माँ-बहन का विचार-विवेक न था, किन्तु शनैः-शनैः वे इस नियम को समझने लगे और माँ-बहन इत्यादि निकट के सम्बन्धियों में विवाह का रिवाज बन्द कर दिया। कुछ वेगों को पशु-वृत्ति का नाम देकर तुच्छ माना जाता है, किन्तु न्याय की दृष्टि से देखा जाय, तो मनुष्यों की अपेक्षा पशु अधिक शुद्ध और पवित्र हैं।

किंतु वे वेग पशुओं को भी बदनाम करने योग्य हैं। कारण यह है कि यद्यपि मनुष्यों की अपेक्षा पशु ब्रह्मचर्य का अधिक पालन करते हैं, किंतु वे सन्तति धड़ाधड़ बढ़ाते चले जाते हैं, जिसका परिणाम लड़ाई-भिड़ाई और जीवन के लिये युद्ध (Struggle for Life) होता है। पशुओं की सन्तति केवल लड़ने-मरने, कमज़ोरों के नाश होने और कुछ ताक़तवरों के बच निकलने के कारण बनी रहती है। खेद है, उन मनुष्यों पर, जो न केवल पशुओं की तरह सन्तति उत्पन्न करते जाने में विचार-हीन हैं, बल्कि पशुओं से बढ़कर अपना सफ़ेद ख़ून (वीर्य) विषय-सुख के लिये बहा देने के लिये तैयार हैं। जिस समय हम लोग अर्थात् आर्य लोग इस देश में आये, उस समय हमको ज़रूरत थी कि हमारी सन्तति और संख्या अधिक हो, इसलिये विवाह के समय इस प्रकार की प्रार्थना की जाती थी कि इस पुत्री के दस पुत्र हों। मगर इन दिनों दस पुत्रों की इच्छा करना ठीक नहीं है। तुम कहते हो कि मरने के बाद पुत्र तुम्हें स्वर्ग में पहुँचायेंगे, मगर अब तो जीते जी ये बच्चे, जिन्हें तुम पेट-भर रोटी भी नहीं दे सकते, तुम्हारे पाप अर्थात् नरक के कारण हो रहे हैं। प्यारो, उधार के पीछे नक़द क्यों छोड़ते हो? इसी प्रकार का प्रश्न अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से गीता में किया था कि पिंड और जल कौन देगा? पितर किस प्रकार स्वर्ग में पहुँचेंगे? भगवान् कृष्ण ने स्वर्ग के लिये जो जवाब दिया, उसे भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में ४२ से लेकर ४६ श्लोक तक अपने-अपने घरों में जाकर देख लो।*

---

* भगवान् ने कहा था—"हे अर्जुन! जो मूढ़ पुरुष है, जो वेदों में रत हैं, जो वेदों के अर्थवाद और गुण-गान में मोहित हैं, जो

भगवन्, स्वर्ग मुक्ति नहीं है, स्वर्ग के बाद तो फिर यहाँ आना पड़ता है। स्वर्ग के विषय में क्या ही खूब कहा है—

जन्नत-परस्त ज़ाहिद कब हक़-परस्त है ?
हूरों पै मर रहा है, यह शह्वत-परस्त है।

अर्थात् जो वैकुंठ की कामना रखता है, वह ब्रह्म का उपासक कैसे कहा जा सकता है ? वह तो अप्सराओं की इच्छा रखता है, और कामासक्त है।

प्यारो, अगर तुम जन-संख्या के कम करने में यत्न न करोगे, तो प्रकृति अपनी क्रूर-पद्धति को काम में लायेगी अर्थात् काँट-छाँट करना शुरू कर देगी। जैसा कि महर्षि वशिष्ठ-जी ने कहा है कि (१) महामारी, (२) दुर्भिक्ष, (३) भूकम्प

कहते हैं कि वैदिक कर्मकांड और स्वर्गादि से परे और कुछ नहीं है, जो स्वयं नाना प्रकार की लिप्साओं व कामनाओं से ग्रसित हैं, स्वर्ग ही जिनका ध्येय है, जो गंधहीन पुष्प की तरह सुहावनी किंतु निस्सार वाणियाँ बोला करते हैं, जो भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये बहुत प्रकार की क्रियाएँ करते हैं, पर जो जन्म-रूप कर्मफल से बद्ध हैं, उन भोग और ऐश्वर्य में आसक्त तथा उनके द्वारा हर ली गई चेतनावाले लोगों की बुद्धि, जो नाना व्यवसायों में फँसी हुई है, कभी समाधि में स्थिर नहीं होती। चूँकि वेद तीन गुणों का विषय है, इसलिये, हे अर्जुन ! तू तीनों गुणों से रहित हो, द्वन्द्व-रहित होकर सदा सत्त्व में स्थित हो, तथा योग और क्षेम से रहित होकर आत्मवान् हो। सब ओर से उछलते महान् जलाशय के होते हुए जितना प्रयोजन एक छोटे जलाशय में होता है, उतनी ही आवश्यकता एक ज्ञानवान् ब्राह्मण के लिये सब वेदों में है।" (गीता २, ४२-४६)

और (४) युद्ध के द्वारा छाँट शुरू हो जायगी। यदि गृह-कलह, दुर्भिक्ष, प्लेग आदि नहीं चाहते, तो पवित्रता, ब्रह्मचर्य, हृदय की शुद्धि और निर्मल आचार-व्यवहार को बर्ताव में लाओ। देश में मेल और राष्ट्रीय एकता कदापि स्थिर नहीं रह सकती, जब तक जन-संख्या की वृद्धि और भूमि की पैदावार का अनुपात ठीक न रहे। संसार में कोई देश ऐसा नहीं है, जो निर्धनता में हिन्दुस्तान से कम हो और जन-संख्या में इससे अधिक। ऐसी दशा में झगड़े-बखेड़े और स्वार्थ-परायणता भला क्योंकर दूर हो सकती है और मेल-मिलाप व एकता क्योंकर स्थिर रह सकती हैं? दो कुत्तों के बीच में एक रोटी का टुकड़ा डालकर कहते हो कि मत लड़ो। भला यह कैसे हो सकता है? इस दशा में प्रेम और एकता का उपदेश करना, लेक्चरबाज़ी की हँसी उड़ाना और उपदेश का मखौल करना है। एक गोशाला में दस गायें हों, और चारा केवल एक के लिये हो, तो गायों के समान सीधा-सादा शान्त-स्वभाव और बेज़ुबान पशु भी आपस में लड़े-मरे विना नहीं रह सकता। भला भूखों-मरते भारत के निवासी कैसे शांति और निष्कपटता स्थिर रख सकते हैं? पदार्थविद्या में यह बात सिद्ध हो चुकी है कि किसी की साम्य-स्थिति (Equilibrium) के लिये आवश्यक है कि उसके प्रत्येक अणु की आन्तरिक गति के लिये इतनी जगह हो कि दूसरे अणु की गति में बाधा न पड़ने पावे। अब भला बताओ कि जिस देश में एक आदमी के पेट-भर खाने से बाक़ी दस आदमी अर्द्ध-तृप्त या भूखे रह जायँ, उस देश में भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक-दूसरे के सुख में बाधा डालने-वाले क्यों न हों? और ऐसे देश की शान्ति और साम्य-स्थिति (Equilibrium) कैसे स्थिर रह सकती है? क्या तुम भारतवर्ष को कलकत्ता की काल-कोठरी बनाये

बिना न रहोगे ? जो चीज़ निकम्मी हो जाती है, वह इस लैम्प की तरह नीचे उतार दी जाती है, जो अभी उतार दिया गया है। * आखिर कब समझोगे ? मानवी शक्ति को इस प्रकार नाश मत करो, जिससे तुम्हारी भी हानि और देश की बरबादी हो। इस शक्ति को ब्रह्मानन्द और आत्म-बल में बदल दो। दुनिया का सबसे बड़ा गणितज्ञ सर आइज़क न्यूटन ८० साल से अधिक आयु तक जिया और वह ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता था। दुनिया का बहुत बड़ा दार्शनिक कैंट बहुत बड़ी उम्र तक जिया और वह भी ब्रह्मचारी था। हर्बर्ट स्पेन्सर और स्वीडनबर्ग-जैसे संसार की विचार-धारा को पलट देनेवाले ब्रह्मचारी ही हुए हैं। कुछ अँगरेज़ी समाचार-पत्रों ने यह ख़याल उड़ा रक्खा है कि ब्रह्मचर्य का जीवन आयु को घटाता है। जाँच करने से मालूम होगा कि यह परिणाम पेरिस और एडिनबरा में कुछ वर्षों की विशेष जन-संख्या की रिपोर्टों से निकाला गया था। जिसमें किंचित् भी विवेक-शक्ति है, यदि विचार करे तो देख सकता है कि पेरिस और एडिनबरा में उन्हीं लोगों का विवाह नहीं होता, जो बीमार हों, कंगाल हों, बेकार हों या और किसी कारण घर-घर भटकते फिरते हों। इसलिये उन देशों में अविवाहित और एकाकी जीवन अकाल-मृत्यु का कारण नहीं, बल्कि मृत्यु का भय ही अविवाहित रहने का कारण होता है। और ये अविवाहित मनुष्य, जो आत्मिक और बौद्धिक विकास से शून्य हैं, ब्रह्मचारी नहीं कहला सकते। अतः ब्रह्मचर्य पर जन-संख्या की दृष्टि से आपत्ति करना नितान्त अनुचित है।

---

* एक लैम्प जो मेज़ पर रक्खा था और जिसकी चिमनी काली पड़ गई थी, उस समय मेज़ से नीचे उतार दिया गया था, जिसका यह उल्लेख है।

अब हम दो-एक अमेरिकन ब्रह्मचारियों के जीवन का हाल सुनाकर समाप्त करेंगे। हमारे भारत की विद्या को विदेशियों ने प्राप्त करके उससे लाभ उठाया और हम वैसे ही कोरे-के-कोरे रह गये। यह कैसे खेद की बात है? "हमारे पिता ने कूप खुदवाया है", इसके कहने से हमारी प्यास नहीं जायगी, प्यास तो पानी के पीने से ही जायगी। इसी तरह शास्त्रों को आचरण में लाने से आनन्द होगा। अमेरिका के सबसे बड़े लेखक एमर्सन का गुरु, आजन्म ब्रह्मचारी थोरो भगवद्गीता के बारे में इस प्रकार लिखता है—"प्रतिदिन मैं गीता के पवित्र जल से स्नान करता । गो इस पुस्तक को लिखे हुए अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये, लेकिन इसके बराबर कोई पुस्तक अभी तक नहीं निकली है। इसकी उत्तमता व महत्त्व हमारे आजकल के ग्रन्थों से इतना चढ़-बढ़कर है कि कई बार मैं यह ख़याल करता हूँ कि शायद इसके लिखे जाने का समय बिलकुल निराला समय होगा।" पाताल-लोक (अमेरिका) में उपनिषद्, भगवद्गीता और विष्णु पुराण को सबसे पहले इसी थोरो ने प्रचार किया है। सर टॉमस रो आदि जो योरप से हिन्दुस्तान में आये, वह उन पवित्र ग्रन्थों के लैटिन-अनुवादों को यहाँ से योरप में ले गये और फ्रांस से थोरो उन अनुवादों को अमेरिका में ले गया। इन पुस्तकों के अनुवादों को फ़िरंगियों ने फ़ारसी-भाषा से लैटिन-भाषा में किया था, क्योंकि उस समय योरप के शिक्षित-समुदाय की भाषा लैटिन थी और प्रायः इसी भाषा में ग्रन्थ लिखे जाते थे। अगर सच पूछो तो वेदान्त का झंडा पहले-पहल इसी पुरुष (थोरो) ने अमेरिका में गाड़ा। एक दिन जंगल में सैर करते हुए इससे एमर्सन ने पूछा—"रेड इन्डियन अर्थात्

अमेरिका के असली वाशिन्दों के तीर कहाँ मिलते हैं ?" इसने स्वभावानुसार अपना हर समय का यही उत्तर दिया—"जहाँ चाहो।" इतने में ज़रा झुका और तीर मार्ग से उठाकर झट दे दिया और कहा—"यह लो।" एमर्सन ने पूछा—"देश कौन-सा अच्छा है ?" तो उत्तर दिया कि अगर पैरों तले की पृथिवी तुमको स्वर्ग और वैकुण्ठ से बढ़कर नहीं मालूम देती, तो तुम इस पृथिवी पर रहने के योग्य नहीं।" उसके द्वार हर समय खुले रहते थे, रोशनी और हवा को कभी रोक-टोक न थी। एमर्सन कहता है कि उसके मकान की छत में एक भिड़ों का छत्ता लगा हुआ था, भिड़ों और शहद की मक्खियों को मैंने उसके साथ चारपाई पर बेखटके सोते देखा, मगर वे इस समदर्शी को कभी पीड़ा नहीं पहुँचाती थीं। साँप उसकी टाँगों से लिपट जाते थे, मगर उसे ज़रा परवाह नहीं। काटते तो कैसे, क्योंकि उसके हृदय से दया और प्रेम की किरणें फूट रही थीं, वह व्यालभूषण बना हुआ था, और इस तरह शंकर के समान व्यावहारिक ज्ञान रखता था। जिस पुरुष को दुनिया का नखरा-टखरा नहीं हिला सकता, वह दुनिया को ज़रूर हिला देगा। अमेरिका का एक और महापुरुष वाल्ट व्हिटमैन अभी हाल में गुज़रा है, जो 'अमेरिका की स्वतंत्रता की लड़ाई' (War of Independence) के दिनों में स्वतंत्रतापूर्वक गीत गाता फिरा करता था। उसके चेहरे से प्रसन्नता टपकती थी और उसके हाथ सदा काम में लगे रहते थे। उसका लड़ाई में यही काम था कि घायलों की मरहम-पट्टी करे, प्यासों को पानी और भूखों को रोटी दे और लोगों के दिलों में हिम्मत और साहस को पैदा कर दे, तथा आनन्द से गीत गाता फिरे। उसकी आँखों से आनन्द बरसता था। उसकी वाणी से मस्ती झड़ती थी। जिस

तरह कुरुक्षेत्र की रण-भूमि में कृष्ण भगवान् और भूत-पिशाचों के बीच में शिव भगवान् विचरते थे, उसी तरह यह महापुरुष अमेरिका के उस रणक्षेत्र में बेधड़क घूमता-फिरता था। इसने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम "लीव्ज़ ऑफ़ ग्रास" है। इसके पढ़ते-पढ़ते मनुष्य आनन्द से गद्गद् हो जाता है।

ॐ ! आनन्द ! आनन्द ! आनन्द !

डटकर खड़ा हूँ ख़ौफ़ से ख़ाली जहान में ;
तसकीने-दिल भरी है मेरे दिल में, जान में।

सूँघें ज़मा-मकाँ हैं मेरे पैर मिस्ले सग ;
मैं कैसे आ सकूँ हूँ क़ैदे-बयान में।

× × ×

ख़ुश खड़ा दुनिया की छत पर हूँ तमाशा देखता ;
गहगहे देता लगा हूँ वहशियों की-सी सदा।

बादशाह दुनिया के हैं मुहरे मेरी शतरंज के ;
दिल्लगी की चाल हैं सब रंग सुलहो-जंग के।

रक्स शादी से मेरे जब काँप उठती है ज़मीं ;
देखकर मैं खिलखिलाता क़हक़हाता हूँ वहीं।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

व्यावहारिक वेदान्त और

आत्म-साक्षात्कार

(ता० ११ सितंबर, १९०५ को फ़ैज़ाबाद में दिया हुआ व्याख्यान)

अमेरिका में अमली अर्थात् व्यावहारिक वेदान्त का वर्ताव होता है, इसी से वह देश संपत्तिवान है। व्यावहारिक वेदान्त यही है कि अपने आपको सारा देश ही नहीं, वरन् संपूर्ण संसार अनुभव करे; और अपने आपको एक शरीर में परिच्छिन्न करना काल-कोठरी समझे।

इतना छोटा नहीं हदूद अरबा[१]
पगड़ी-जोड़ा नहीं हदूद अरबा
टोपी-जूता नहीं हदूद अरबा

मैं साढ़े तीन हाथ के टापू (शरीर) में क़ैद नहीं हूँ, वरन् सब की आत्मा—सब का अपना आप—मैं ही हूँ। पाताल देश (अमेरिका) के लोगों ने भी इस बात को मान लिया है। हरएक को भाले की नोक के नीचे या प्रकृति के डंडे के ज़ोर से स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आत्मा के सिवा और कोई स्थान आनंद का नहीं है। आनंद का भंडार यदि है, तो वह केवल अपना आप ही है। उसी में स्वतंत्रता है, उसी में शांति और उसी में आनंद है। मद्य पीना लोग क्यों नहीं छोड़ते ? आप लोग हज़ारों यत्न

---

१ चौहद्दी, सीमा।

करते हैं, टेम्परैंस सोसाइटियाँ सदैव इसे त्याग देने का उपदेश करती रहती हैं, मगर क्या कारण है कि तिस पर भी लाखों व्यक्ति इस वर्जित मदिरा को नहीं छोड़ते। कारण यही है कि वह अपने आत्मदेव की कुछ थोड़ी-सी झलक (स्वतंत्रता) दिखला देती है, अथवा शरीर-रूपी बंदीगृह से थोड़ी देर के लिये छुटकारा दे देती है। हाय स्वतंत्रता! प्रत्येक व्यक्ति इसी का इच्छुक है, समस्त जातियों और समाजों में सदैव 'स्वतंत्रता-स्वतंत्रता' का ही शोर सुनने में आता है, बच्चे भी इसी के अभिलाषी हैं। बच्चों को रविवार सब दिनों से अधिक प्यारा क्यों लगता है? केवल इसलिये कि वह उनको ज़रा स्वतंत्रता दिलाता है अर्थात् उस दिन बच्चों को छुट्टी मिलती है। यह छुट्टी का दिन केवल बच्चों को ही प्रसन्न और मुदित नहीं करता, वरन् इसके नाम से स्कूल के मास्टरों और दफ़्तर के क्लर्कों के पीले चेहरों पर भी सुर्ख़ी आ जाती है।

प्रयोजन यह कि प्रत्येक को स्वतंत्रता का आनन्द प्यारा है। क्यों न हो? स्वतंत्रता तो मुक्त पुरुष का स्वरूप ही है। अपना स्वरूप प्रत्येक को निस्संदेह प्यारा से भी प्यारा होता है। हाँ, जब कोई प्यारा अपने स्वरूप से पृथक् होकर सांसारिक बंधनों और पदार्थों में इस स्वतंत्रता के पाने का प्रयत्न करता है, तो वह अपने आपको अंततः ख़ाली हाथ ही पाता है। इस कारण प्रत्येक अनुभवी पुरुष बोल उठता है कि संसार में या सांसारिक पदार्थों में वास्तविक स्वतंत्रता कदापि नहीं मिलती। क्योंकि वास्तविक स्वतंत्रता तो देश, काल और वस्तु की सीमा से परे हटकर मिलती है; इनके कीचड़ में फँसे रहने से नहीं प्राप्त होती। देश, काल और वस्तु के बंधन में पड़कर तो सैकड़ों देश और राष्ट्र इस स्वतंत्रता के लिये लड़े और मरे। रूस और जापान

का युद्ध केवल इसी स्वतंत्रता के लिये हुआ, किंतु स्वतंत्रता फिर भी संसार में आकाश-पुष्प ही रही।

प्यारो! जो मनुष्य निज स्वरूप आत्मा में निष्ठा रखता है, वह स्वतंत्र ही है, क्योंकि आत्मा ही स्वतंत्रता का भंडार है; और जो अपने स्वरूप (आत्मा) का साक्षात्कार (अनुभव) नहीं करता, वह न इस लोक में स्वतंत्र हो सकता है, और न परलोक में अविनाशी आनंद को प्राप्त कर सकता है। ज्ञानवान् पुरुष ही इस संसार के पदार्थों और बंधनों से मुँह मोड़कर मुक्ति के अमृत को प्राप्त करते हैं। डॉक्टर जॉन्सन और 'डिज़र्टेड विलेज' नामक काव्य के रचयिता अँगरेज़ कवि गोल्डस्मिथ से इस विषय पर बहस हो रही थी कि बातचीत करने में ऊपर का जबड़ा हिलता है या नीचे का। यह सीधी-सादी बात थी, मगर इस बड़े लेखक (गोल्डस्मिथ) की समझ में नहीं आती थी, यद्यपि इस बात पर उसका अमल था।

जैसे अँगरेज़ों के यहाँ क्रॉमवेल और मुसलमानों के यहाँ बाबर हुआ है, वैसे ही हिंदुओं के यहाँ इस युग में रणजीतसिंह हुआ है। इस भारत के गौरव और पंजाब के नर-केसरी का ज़िक्र है कि एक बार शत्रु की सेना अटक नदी के पार थी और इसके आदमी नदी के पार जाने से झिझकते थे। इसने अपना घोड़ा उस नदी में यह कहकर डाल दिया—

सभी भूमि गोपाल की, या में अटक कहा?
जाके मन में अटक है, सो ही अटक रहा।

उसके पीछे उसकी सारी सेना नदी को पार कर गई। यद्यपि शत्रु की सेना के सामने ये थोड़े-से आदमी थे, किन्तु उनकी यह वीरता देखकर शत्रु की सेना के दिल धड़क उठे, सब-के-सब

इनके इस उत्साह से भयभीत होकर भाग गये, और युद्ध-क्षेत्र भारत के उस सूरमा के हाथ आया। बात क्या थी? उसके हृदय में विश्वास का जोश मौजें मार रहा था। वह रात-भर ईश्वर के ध्यान में मग्न रहता था। उसकी प्रार्थनाओं में ख़ून आँसू होकर आँखों की राह बह निकलता था। यही कारण था कि उसके भीतर वह बल आ गया। आत्म-बल, विश्वास-बल या इसलाम की शक्ति से वह भर गया, अथवा दूसरे शब्दों में यों कहो कि उसने आत्मा का साक्षात्कार किया। यहाँ ज़बानी जमा-ख़र्च का काम नहीं। साक्षात्कार वह अवस्था है, जहाँ रोम-रोम से आनन्द बह रहा हो। कहते हैं, हनुमान के रोम-रोम में 'राम' लिखा हुआ था। इसी तरह इस रणजीतसिंह के भीतर विश्वास का बल भरा हुआ था। ऐसे साक्षात्कारवालों को नदी भी मार्ग दे देती है, पर्वत भी अपने सर-आँखों पर उठा लेता है। संसार की सफलता का भी यही गुर—भीतर की शक्ति या आत्मबल—है। मेरे भीतरवाला परमेश्वर सर्व-शक्तिमान् है।

"वह कौन-सा उक़दा है जो वा हो नहीं सकता?"

अर्थात्—वह कौन-सी ग्रंथि है, जो खुल नहीं सकती?

जर्मनी का बादशाह फ्रेडरिक दि ग्रेट फ़्रांस के साथ लड़ रहा था। उसकी फ़ौज हार गई और वह परास्त हुआ। कुछ लोग मारे गये, कुछ फ़्रांसीसियों के हाथ आ गये। यह बादशाह विद्या-प्रेमी और ईश्वर-भक्त था। इसको आत्म-साक्षात्कार की कुछ थोड़ी-सी झलक आ गई थी। इसने उन थोड़े-से बचे-खुचे आदमियों से कहा कि दस-पाँच आदमी एक प्रकार का बाजा लेकर पूरब से बजाते हुए आओ, कुछ लोग पच्छिम से, कुछ उत्तर से और कुछ दक्खिन से। तात्पर्य यह कि वे थोड़े-से

आदमी चारो ओर से बाजा बजाते हुए उस क़िले के भीतर आने लगे, जिसे फ़्रांसीसियों ने छीन लिया था, और यह नर-केसरी अकेला, विना हथियार लिए हुए, उस क़िले में घुस गया, और उच्च स्वर से कहने लगा—"यदि अपने प्राण बचाना चाहते हो, तो अपने-अपने हथियार फेंक दो, और क़िला छोड़कर भाग जाओ ; नहीं तो मेरी सेना जो चारो ओर से आ रही है, तुमको मार डालेगी।" चारो ओर से बाजों की आवाज़ सुनकर और इस वीर पुरुष का साहस देखकर वह लोग घबरा गये और तत्काल दुर्ग छोड़कर भाग गये। इस वीर पुरुष ने अकेले और विना अस्त्र-शस्त्रों के ही उस दुर्ग पर विजय पाई और शत्रुओं की बड़ी हार हुई। बस संसार में भी इस आत्म-बल की आवश्यकता है, इस साक्षात्कार की ज़रूरत है। राम जान-जानकर विदेशों की कहानियाँ तुमको सुनाता है कि तुमको ज़रा तो ख़्याल आवे। यह अमृत अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार करना निकला तो भारतवर्ष से ही, किन्तु इससे लाभ उठा रहे हैं अन्य देशवाले। इस ब्रह्मविद्या की प्रत्येक को आवश्यकता है। क्या धार्मिक उन्नति और क्या सांसारिक उन्नति, दोनो के लिये विश्वास या वेदान्त या ब्रह्मविद्या या आत्म-साक्षात्कार की आवश्यकता है। क्या तुमको इस आत्म-साक्षात्कार की आवश्यकता नहीं है? यह भीतर का आत्मबल ही तुम्हारा आचरण है, और बाहर के रगड़े-झगड़े तुम्हारे आत्मबल को जोखिम में डालते हैं। जब मनुष्य सीधी तौर इस आचरण को प्राप्त नहीं करता, तो विपत्तियाँ उसके भीतर से आत्मबल को उभाड़कर यह आचरण (Character) उत्पन्न कर देती हैं। विकासवाद का नियम पुकार-पुकारकर इसी उत्तम पाठ का उपदेश कर रहा है, और यह प्रकृति का नियम है कि जिनमें बल होगा, वे वही स्थिर

रहेंगे। जिसके भीतर साहस है, उसीमें शक्ति है और जिसमें शक्ति है, उसीमें जीवन है। साहस तो भीतर की वस्तु है। जहाँ परमेश्वर है, वहीं साहस है। डंडे की चोट से चलना तो पशुओं का काम है, मनुष्य समझ लेता है और उसे काम में ले आता है—

ख़ुद तो मुंसिफ़ बाश ऐ जाँ ईं निको या आँ निको।

अर्थात् "ऐ प्यारे! तू स्वयं न्यायी बन कि यह अच्छा है या वह अच्छा है।" क्या आवश्यकता है कि प्रकृति (Nature) तुमको डंडे मार-मारकर सिखलाए? ख़ुशी से क्यों न सीखो।

इस जगत् से मुँह मोड़ना क्या है? एक तो यह कि बाहर की वस्तुएँ आपकी दृष्टि में न रहें, दूसरे यह कि "मूतू क़िब्ल-अल्-मूतू" अर्थात् मरने से पहले मर जाना है, या सब कुछ उस ईश्वर (अपने आत्मा) के अर्पण कर देना है। जब सब बाहर की वस्तुएँ इस प्रकार आहुति में डाल दी जाती हैं, तब तो त्रिलोकीनाथ ही रह जाते हैं। कोई भी मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि उसमें आत्मबल का विश्वास न हो। जिसमें यह विश्वास अधिक है, वह स्वयं भी बढ़ा है और औरों को भी आगे बढ़ाता है—

धन भूमी धन देश काल हो;
धन-धन लोचन दरस करें जो।

जिस वन में आत्म-साक्षात्कारवाला जाता है, वह हरा-भरा हो जाता है, जिस देश में साक्षात्कारवाला पाँव रखता है, वह देश-का-देश निहाल हो जाता है। विज्ञान-स्वरूप महात्मा वही है, जिससे प्रेम का सोता बह निकलता है—

रवाँ कुन चशमहा-ए-कौसरी रा।

अर्थात् "कौसर (नदी) के सोतों को बहने दे।" ये ही स्वर्ग की या आत्मानंद की नदियाँ हैं। किसको इस पानी की ज़रूरत

नहीं है ? फूल हो या घास, गेहूँ हो या कपास, मनुष्य हो या पशु, सभी को इस पानी की ज़रूरत है।

सुलेमाना बियार अंगुश्तरी रा।

अर्थात् "ऐ सुलेमान, अँगूठी को ला।" जब अँगूठी मिल गई, फिर भटकना किस लिये? कहाँ तो तुम्हारा स्वराज और कहाँ तुम भिखारी? कहाँ तो तुम्हारा आत्मानन्द का धाम और कहाँ यह हाड़-चाम?

सूरज को सोना, चाँद को चाँदी, तो दे चुके;
फिर भी तवाफ़[1] करते हैं देखूँ जिधर को मैं।

यह कोई अलंकार नहीं है, सच्ची घटनाएँ हैं। सीधे-सादे शब्दों में इसका यह अर्थ होता है कि सिवा परमेश्वर के तुम्हारा आत्मा कुछ और नहीं है। जब परमेश्वर मेरा आत्मा है, तो मैं दुःख में कैसे रहूँ? संसार में ऐसे पुरुष हो गये हैं। जिनके भीतर से विश्वास के सोते बह निकले हैं, और इस अमृत से देश-के-देश सींचे गये हैं। अरब में कोई हो गया है, जिसके भीतर से यह विश्वास की आग भड़क उठी। यह विश्वास कभी दासोऽहम् के भाव में और कभी शिवोऽहम् के भाव में प्रकट हुआ करता है। वह अरब-केसरी सबको यों दहाड़ता है—

अगर सूरज हो मेरी दाईं तरफ,
और हो चाँद भी बाईं जानिब खड़ा।
कहें मुझसे गर दोनों—"बस, अब रुको",
न मानूँ कभी कहना उनका जरा।

---

१ परिक्रमा

वह जो भीतर का आत्म-बल है, उसके सामने सूर्य और चंद्रमा की क्या बिसात है ? "एकमेव द्वितीयो नास्ति" अर्थात् "नहीं है कुछ भी सिवा अल्लाह के" = "एक ईश्वर के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है।" सीधी-सादी बात है, मगर विश्वास क्यों नहीं आता ?

विश्वास, श्रद्धा, ईमान, यक़ीन, सबका अर्थ एक ही है। "उसका ईमान चला गया या वह बेईमान है", यह बड़ी भारी गाली है। फिर क्यों नहीं ईमान, यक़ीन, श्रद्धा या विश्वास लाते ? किसमें ? उसी एक आत्मदेव में, जो प्राणों का प्राण और जीवों का जीव है। अगर यह विश्वास हो, तो सारे पाप धुल जायँ। यदि देश में एक ऐसा व्यक्ति उत्पन्न हो जाय, तो देश-का-देश प्रफुल्लित हो जाय। बस अपने अहं-भाव को दूर करो, ख़ुदी को मिटा दो, और इस प्याले के भीतर जो आत्मदेव का अमृत है, उसका पान करो। इस अमृत की किसको आवश्यकता नहीं है ? मुसलमान, ईसाई, यहूदी और हिंदू सभी तो इस अमृत की चाह में मारे-मारे फिरते हैं—

एको अलिफ़ तेरे दरकार।

अलिफ़ को जानना था कि आत्मबल आ गया। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" अर्थात् "ईश्वर सत्य है और जगत् मिथ्या है।"

उस विश्वास को लाओ जो ध्रुव में आया, प्रह्लाद में आया, नामदेव में आया। इसी विश्वास की बदौलत संपूर्ण शंका, प्रलोभन और झगड़े दूर हो जाते हैं। मस्त महात्मा दत्तात्रेय एक बार कहीं जा रहा था। आँधी आ रही थी। दीपक के प्रकाश या चाँद की चाँदनी से उनका तेजोमय मुख एक दुश्चरित्रा स्त्री को अपने कोठे पर से दिखाई दिया। इस सूर्य-स्वरूप महात्मा के तीन बार दर्शन पाते ही उस नारी के हृदय

का अंधकार दूर हो गया और उसकी दशा पलट गई। महात्माओं के दर्शन ही से विषय-वासना दूर हो जाती है। किसी का महात्मा होना ही सारे संसार को हलचल में डाल देता है, चाहे वह देश में उपदेश दे या न दे। केवल देश की ही दशा नहीं, सारे संसार की दशा उसके प्रकट होते ही उत्तम हो जाती है। जिस प्रकार किसी स्थान की हवा हल्की होकर जब ऊपर को उड़ती है, तो उसकी जगह भरने को चारो ओर की हवा वहाँ आ जाती है और सारे वायुमंडल में हलचल मच जाती है, उसी प्रकार एक महात्मा भी सारे संसार को हिला देता है। और, यदि तुम महात्मा के अस्तित्व ही को नहीं मानते, तो फिर कैसे उससे लाभ उठा सकते हो? यदि किसी ने तुमको सोने के स्थान पर कोई और वस्तु दे दी, तो क्या तुम उससे यह परिणाम निकालोगे कि सोना है ही नहीं, या सारे संसार में ताँबा ही है? जो सोने को माने ही गा नहीं, वह भला उसे कहाँ पायेगा? जहाँ सच है, वहाँ झूठ भी आ जाता है। मुलम्मे का होना असली सोने की बड़ाई को ही प्रकट करता है, कुछ उसके अस्तित्व को नहीं मिटाता। संसार का इतिहास इस बात को सिद्ध करता है कि यदि कोई व्यक्ति जिसकी दृष्टि में ब्रह्म-ही-ब्रह्म हो, आँखें खोलकर संसार-रूपी बाज़ार में विचरे, तो वह सारे संसार को प्रेम-रूप देखकर प्रसन्न होता है; और जिसके भीतर शत्रु-भाव की अग्नि प्रचंड है, वह अपने चारो ओर शत्रुओं को ही पाता है, उसको सारा संसार शत्रुता से पूर्ण दिखाई देता है। इसलिये ओ प्यारे आनन्द के खोजनेवाले! ज़रा दृष्टि को फेर—

बेगाना गर नज़र पड़े, तू आशना को देख;
दुशमन गर आये सामने, तो भी ख़ुदा को देख।

दोहा—जो कुछ दीखे जगत में, सब ईश्वर में ढाँप ;
करो चैन इस त्याग से, धन लालच से काँप।

जिसकी ऐसी दृष्टि हो जाती है, उसके लिये दुःख और शोक कहाँ आ सकते हैं ? और उसके होने से सारे देश में साहस और शक्ति आ जाती है। अतः ऐ सुधारको ! बतलाओ, आत्म-साक्षात्कार करना कितना बड़ा सुधार है ? पहले अपने आपका सुधार करो अर्थात् अपनी दृष्टि उच्च करो, फिर सारे देश में सुधार आप ही हो जायगा। आजकल संसार में जो सबसे बड़ी यूनिवर्सिटी है, उसके प्रोफ़ेसर डॉक्टर स्तारबक (Starbuck) मत-परिवर्तन के विषय में यों राय देते हैं कि मस्तिष्क में विश्वास से एक प्रकार की लकीरें पैदा हो जाया करती हैं। जब कोई दूसरा पक्का विश्वास उसी मस्तिष्क में स्थान लेना आरम्भ करता है, तो पहले की लकीरें मिट जाती हैं, और नई पैदा हो जाती हैं। इसलिये एक प्रकार की पहली लकीरों का मिटाना और उनके स्थान पर वहाँ दूसरी लकीरों का पैदा हो जाना चाल-चलन का बदलना या भीतरी परिवर्तन कहलाता है। यही इसलाम, विश्वास और यक़ीन है, जिसके बिना मन के पहले बुरे चिह्न और धब्बे दूर नहीं होते, और मन शुद्ध नहीं होने पाता।

आजकल इँगलैंड और अमेरिका इसी विश्वास की बदौलत उन्नति कर रहे हैं। यूनान कहाँ गया ? उसका धर्म क्या हुआ ? रोम और मिस्र के धर्म क्या हुए ? किन्तु आश्चर्य की बात है कि भारतवर्ष पर विपत्ति-पर-विपत्ति आवें और धर्म की गंध स्थिर रहे। क्यों जी, महाराजा रामचन्द्र इसी देश में उत्पन्न हुए थे ? प्यारे कृष्ण भी इसी भारत की गोदी में पले थे ? यह मेल और एकता ऐसे शूरवीर ही स्थिर रख सकते हैं। जिस

देश में वीर (Hero) नहीं, वह देश स्थिर नहीं रह सकता। इसी तरह राम और कृष्ण के नाम और वेदों की बदौलत यह देश स्थिर है। इन सूरमा महात्माओं से उसी प्रकार लाभ उठाना चाहिए, जैसे हम सूर्य से उठाते हैं। हबश के लोग हर वक्त सूर्य के सामने रहने के कारण कैसे काले हो जाते हैं, हमको भी राम और कृष्ण की उसासना करते हुए अपने हृदयों को काले न होने देना चाहिए। जब आँखों को आपने भगवान् के अर्पण कर दिया, फिर तो ये आँखें ईश्वर की हो गई, न कि आपकी। इसी प्रकार जब बाहुओं को ईश्वरार्पण कर दिया, तो वे ईश्वर के हो गये। इसी तरह जब आपने अपने आपको ईश्वरार्पण कर दिया, तब आप परमात्मा के शुद्ध स्वरूप हो गये—साक्षात् भगवान् राम या कृष्ण हो गये। अब प्रेम का पीलापन ज्ञान की लालिमा में परिवर्तित हो गया, और परिणाम में आनन्द की मस्ती टपकने लगी।

आज तीन दिन राम को, जिसके यहाँ आनन्द की बादशाहत के सिवा कुछ और है ही नहीं, तुम्हारे यहाँ झाड़ू देते हो गये। आज तो गद्दी पर बैठता है, और कहता है कि शपथ है ईश्वर की, सत् की, राम की, कि तुममें से प्रत्येक वही शुद्ध स्वरूप आत्मा या परम ईश्वर है। जानो अपने आपको, और छोड़ो इस दासपन को। तुम्हारा साम्राज्य तो सच्चा है।

> वाह! क्या ही प्यारा नक़्शा है, आँखों का फल मिला;
> उस सोहने नौजवान का जीना सफल हुआ।
> महल उसका जिसकी छत पै हैं हीरे जड़े हुए;
> क़ौसे-क़ुज़ह[1] व अब्र[2] के परदे तने हुए।

---

१ इंद्र-धनुष। २ मेघ-मण्डल।

मसनद[1] बुलन्द[2] तख़्त[3] है पर्वत हरा-भरा ;
और शजू[4] देवदार का है चँवर झूलता।

नग़मे[5] सुरीले ॐ के हैं उससे आ रहे ;
नदियाँ परिंदे[6] याद में हैं सुर मिला रहे।

बेहोशो[7] हिस है गरचे पड़ा खाल की तरह ;
दुनिया है उसके पैर के फुटबाल की तरह।

कैसी यह सल्तनत है, अदू[8] का निशाँ नहीं ;
जिस जा[9] न राज मेरा हो, ऐसा मकाँ नहीं।

क्यों दाएँ से और बाएँ से मुड़ जायँ न आँखें ;
जब रंग हो दिलख्वाह तो जुड़ जायँ न आँखें।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !! ॐ आनन्द !!!

---

१ विश्रान्ति का स्थान। २ उच्च। ३ आसन। ४ वृक्ष। ५ ध्वनि। ६ पक्षी। ७ निश्चेष्ट अवस्था। ८ शत्रु। ९ स्थान।

भारत की वर्तमान आवश्यकताएँ

(इस पत्र को स्वामी राम ने कैलीफ़ोर्निया के 'शास्ना'-नामक झरने से स्वामी शिवगुणाचार्यजी, शांतिआश्रम, मथुरा के नाम भेजा था)

राम की कुटी की खिड़की के बाहर शुद्ध-स्वच्छ बर्फ़ के सुन्दर टुकड़े बहुत वेग से गिर रहे हैं, इनकी शोभा बहुत ही अपूर्व है। सब पहाड़ बिलकुल 'शुश्ता' हो रहा है, अर्थात् पहाड़ के चारों ओर श्वेत, निर्मल और मनोहर बर्फ़-ही-बर्फ़ दिखाई पड़ती है। राम ने अभी 'विकासवाद' की एक नई पुस्तक पढ़कर रख दी है।

नवीनता, प्रतिष्ठा या लोकप्रियता प्राप्त करने की इच्छा प्रायः लोगों को सत्य के मार्ग से विमुख रखती है। इस प्रकार की इच्छा को एक ओर छोड़कर और मस्तिष्क को साम्य-अवस्था में रखकर—अर्थात् न उदासी में निराश होकर और न आत्म-प्रशंसा के बादलों में उड़कर—यदि हम भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताओं के प्रश्न पर विचार करते हैं, तो भारत की उस शोचनीय दशा से हमारी मुठभेड़ हो जाती है, जिसमें एक ही पवित्र भूमि में रहने के संबंध या बंधन की बिलकुल परवाह नहीं होती। इसका तात्पर्य यह निकलता है कि हममें पड़ोसी के प्रेम का शोचनीय अभाव है। धार्मिक संप्रदायों ने सच्चे मनुष्यत्व को और इस भाव को कि हम सब एक ही राष्ट्र के अंग हैं, ढक दिया है।

अमेरिका में भी यदि अधिक नहीं तो हिन्दुस्तान के बराबर तो अवश्य ही पन्थ और मार्ग हैं। परन्तु उन थोड़े-से ओछे

मतवालों को छोड़कर, जिनकी जीविका उनके पन्थ पर निर्भर है; बाक़ी सब लोगों में कैथोलिक, मैथोडिस्ट और प्रेसबिटेरियन इत्यादि मत-मतांतरों का भाव देश-बंधुता के भाव को न कभी हटाता है, न अपने अधीन करता है। ठीक-ठीक और सत्य कहते हुए यह मानना पड़ेगा कि नाम-मात्र का धर्माभिमान अमेरिका के लोगों में स्वाभाविक मनुष्यता किंवा प्राणि-मात्र पर दया का लोप नहीं कर देता, जैसा कि भारत में होता है। हिन्दुस्तान में मुसलमानों को हिंदुओं के साथ एक ही जगह रहते हुए पीढ़ियों पर पीढ़ियाँ व्यतीत हो गईं, परंतु हिंदुस्तान में अपने पड़ोस में रहनेवालों की अपेक्षा वह दक्षिण योरप के तुर्कों के साथ सहानुभूति दिखाते हैं। एक बालक जो हिन्दू-बाप के रक्त-मांस से बना है, ज्योंही ईसाई हो जाता है, त्योंही वह एक गली के कुत्ते से भी ज्यादा अपरिचित बन जाता है। मथुरा का एक कट्टर द्वैतवादी वैष्णव दक्षिण के एक द्वैतवादी वैष्णव के लाभ के लिये और अपने ही नगर के एक अद्वैतवादी वेदान्ती का मान भंग करने के लिये क्या नहीं करता? यह सारा दोप किसका है? सब पन्थों के पक्षपात और खोखले ज्ञान का, जो सब जगह एक-सा है। इस अँगरेज़ी कहावत का कि "शत्रु साथ-साथ रहते हैं", वर्तमान भारत की दशा के लिये आरोप करना ग़लत न होगा। यहाँ एक-राष्ट्रीयता का विचार-मात्र भी एक अर्थहीन कल्पना हो गई है। इसका कारण क्या है? इसका स्पष्ट कारण मरे हुए मुर्दों की मुर्दा लकीरों से अंधे होकर फ़क़ीर हो जाना और ऊट-पटाँग पक्षपातों की, जो धर्म के पवित्र नामों से पुकारे जाते हैं, घोर दासता है! या यों कहो कि प्रमाण-पालन का चिकना-चुपड़ा नाम देकर आध्यात्मिक आत्मघात करना है!

केवल उदार शिक्षा, यथार्थ ज्ञान, सप्रयोग परीक्षण अथवा

दार्शनिक विचार-पद्धति के अभ्यास से ही यह असत्य कल्पना दूर हो सकती है, और कोई मार्ग नहीं। आधुनिक शास्त्र-शोधन से निकले हुए उत्तम और मनुष्य-कर्तव्य सिखानेवाले तत्त्व जिस पंथ या धर्म में न हों, उसे कदापि यह अधिकार नहीं है कि वह अपने भोले भक्तों को अपना शिकार बनावे। प्राचीन काल के बहुत-से धार्मिक तत्त्व और प्रथायें राम के मत से तो केवल उस समय के जाने हुए शास्त्र के नियम और सिद्धांत थे। परंतु वाह रे दुर्दैव! वे तत्त्व जो पहले बड़े विरोध से माने गये, फिर इस अंधविश्वास के साथ माने गये कि उनको जन्म देनेवाली माता अर्थात् स्वतन्त्र विचार और निदिध्यासन का गला घोंट दिया गया!

धीरे-धीरे यह अंधविश्वास इतना बढ़ गया कि एक बालक 'मैं मनुष्य हूँ', यह समझने के पहले ही अपने को हिंदू, मुसलमान अथवा ईसाई कहने लगा। जब मत-मतांतरों पर चलनेवालों के आलस्य व जड़ता के कारण व्यक्ति विशेष और ग्रंथों के प्रमाणों के आधार पर धार्मिक रीति-रवाज माने और स्वीकार किये जाने लगे, और जब स्वयं अभ्यास, मौलिक अन्वेषण, चातुर्य और ध्यान इत्यादि—जिससे धर्म-संस्थापकों ने आध्यात्मिक और आधिभौतिक प्रकृति तथा उसके नियमों का दक्षता के साथ अध्ययन किया था—लोप होने लगे, तब सृष्टि के नियमानुसार धर्म की अवनति आरंभ हो गई। शनैः-शनैः ईसा मसीह के पहाड़ी उपदेश अथवा वैदिक यज्ञों के असली उद्देश्यों को तिलांजलि दी जाने लगी और उन मत-मतांतरों के चलानेवालों के नामों की पूजा बड़ी श्रद्धा से होने लगी। केवल इतना ही नहीं हुआ, वरन् देह (शव) की पूजा करने की अभिलाषा से देही (शिव) का हनन कर दिया गया।

ईसा, मुहम्मद, व्यास, शंकर इत्यादि सत्यनिष्ठ और निष्कपट महात्मा थे। उन्होंने प्रकृति-रूपी मूल-ग्रन्थ के अनंत ज्ञान का अध्ययन करके इधर-उधर का थोड़ा बहुत (अपूर्ण) ज्ञान प्राप्त किया और अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म-ग्रंथ लिखे। किंतु उनके अनुयायी उन्हें पैग़म्बर या अवतार का झूठा नाम देकर तथा उनके ग्रंथों की वाणी को "आदि सत्य, युगादि सत्य, है सत्य, हो भी सत्य" मानकर उसकी व्याख्या करते हैं, जो निश्चय ही प्रकृति के मूल-ग्रंथ के विरुद्ध (असत्य और अपूर्ण) है, और ऐसा करके वे अज्ञान-वश अपने गुरु और उनके ग्रंथ का अपमान करने-कराने का कारण होते हैं।

राम के कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि लोक-संग्रह के लिये इन धार्मिक रीतियों का कोई उपयोग ही न था। किसी समय इनका उपयोग अवश्य था। इन रीतियों की आवश्यकता ठीक वैसी ही थी जैसे किसी बीज के जीवन और बाढ़ के लिये यह आवश्यक है कि वह बीज एक छिलके से कुछ काल तक ढका रहे। परन्तु उस नियमित काल के पश्चात् अर्थात् उस बीज के कुछ उगने पर यदि वह छिलका नहीं गिरेगा, तो वह बढ़ते हुए दाने के लिये एक कारागार बन जायगा और उसकी बाढ़ को रोकेगा। हमें दाने का छिलके की अपेक्षा विशेष ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि छिलके को, जो दाने की बाढ़ को रोकता है, अलग कर देने के लिये अर्थात् दूसरों के सड़े-गले जूठे विचारों से छुटकारा पाकर प्रकृति के मूल-ग्रंथ को पढ़ने के लिये प्रत्येक मनुष्य को यह अनुभव करना आवश्यक है कि पैग़म्बर की शक्ति अलौकिक नहीं है, वह मेरा भी जन्मसिद्ध अधिकार है।

कुछ लोग ऐसे हैं जिनकी समझ में किसी मकान का ढाँचा या नक़्शा उस समय तक नहीं आता जब तक कि मकान

बनकर उनके सामने तैयार न हो जाय। इसी प्रकार कुछ लोग ऐसे हैं, जिनके ध्यान में वर्तमान काल अथवा भूत काल से एक परमाणु भी आगे बढ़ने का विचार नहीं आता। परन्तु आशा की जाती है कि ऐसे लोगों की संख्या भारतवर्ष में बहुत न्यून होती जाती है। वर्धनशील वेदान्त (Dynamic Vedant) का अभिप्राय जैसा राम ने समझा है, यह है कि लोगों की ढुलमुलयक़ीनी, अशांति और चंचलता दूर कर दे और उनको स्वाभाविक ऐश्वर्य, एकता और विश्व-प्रेम का अनुभव करा दे तथा स्वाभाविक भेद-भावों से एक स्थायी व स्वाभाविक मेल प्राप्त करा दे। ऐसे वेदान्त की किस देश में आवश्यकता नहीं है? भारतवासियों को तो इसकी अत्यन्त आवश्यकता है।

भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने तथा प्रेम और प्रकाश को फैलाने के लिये राम एक चैतन्य मठ (जीवन-संस्था) खोलने के लिये प्रस्ताव करता है, जिसका विशेष विवरण छोड़कर संक्षेप वर्णन यह है—

संक्षेप वर्णन या मसौदा

धर्म और दर्शन

इस मठ में पहले भिन्न-भिन्न धर्मों और दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन किया जायगा। अभ्यासियों को प्राचीन और अर्वाचीन धर्मों और दर्शनों को न्यायकारी या साक्षी की भाँति पक्षपात-रहित होकर अध्ययन करने में सहायता दी जायगी। हरएक विद्यार्थी को स्वयं अपनी योग्यता के अनुसार धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन करना पड़ेगा और यदि आवश्यकता होगी, तो कोई अध्यापक अवश्य सहायता देगा। सायंकाल के समय सम्पूर्ण सभा के सम्मुख उस विद्यार्थी ने जो कुछ दिन भर में पढ़ा है, या पढ़ते

समय जो विचार उसके मन में उत्पन्न हुए हैं, उन सबका संक्षिप्त वर्णन करना पड़ेगा। इन संक्षिप्त वृत्तांतों को सुनकर हर रात्रि को राम की देख-रेख में एक शांति-पूर्ण विवेचनात्मक वार्तालाप इस अभिप्राय से हुआ करेगा कि जिन विषयों को मठ के भिन्न-भिन्न सभासदों ने अध्ययन किया है, उनका समन्वय किया जाय। इस प्रकार आपस में मेल और प्रेम बढ़ेगा और हरएक सभासद दूसरे सभासदों के मानसिक परिश्रम से लाभ उठावेगा, और उसके बदले में अपने मानसिक परिश्रम के फल को सबके सम्मुख उपस्थित करेगा। वर्तमान आवश्यकतानुसार इकट्ठे होकर एकसाथ काम करने से मानसिक कार्य-क्षमता का अधिक प्रचार होगा और सच्ची संस्कृति का विकाश होगा।

पदार्थ-विद्या

नये प्रवेश हुए विद्यार्थियों को धर्म और दर्शन की सहायता से, जिसकी माँग भारतवर्ष में बहुत है, सहयोग शिक्षा-पद्धति (आपस में मिल-जुलकर पढ़ने की शैली) का स्वाद चखाया जायगा और फिर पदार्थ-विद्या की भिन्न-भिन्न शाखायें, अर्थात् वनस्पति-शास्त्र, प्राणि-शास्त्र, विद्युत्-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, खगोल-शास्त्र आदि भी उनके पाठ्य-क्रम में सम्मिलित किये जायँगे। इन विद्याओं को उनके अभ्यास-क्रम में प्रवेश कराते ही एक पुस्तकालय और रसायन-प्रयोगशाला, वेधशाला और इस प्रकार के बहुत-से दूसरे भवन स्थापित हो जायँगे।

इस मठ में उपर्युक्त पदार्थ-विद्याओं के प्रचार करने का यह उद्देश्य है कि कुछ भारी धार्मिक भ्रम-भ्रांतियों का निवारण हो जाय और लोगों की शक्ति अधिक लाभदायक व बुद्धि-पूर्ण दिशा में लगाई जा सके। इस मठ में पदार्थ-विद्या का पठन-पाठन धार्मिक भाव के साथ होगा। पदार्थ-विद्या, शिल्प तथा और-और

काम भी, जो देखने में लौकिक प्रतीत होते हैं, यहाँ इस उद्देश्य से सीखे-सिखाए जायँगे कि वेदान्त के भाव से सांसारिक काम-काज किस प्रकार किये जायँ। कहा जाता है कि अगेसिज़, जो भौतिक शास्त्र का एक बड़ा भारी पंडित था, अपनी प्रयोगशाला को गिरजाघर से कम पुनीत नहीं समझता था और न किसी भौतिक तत्त्व को एक नैतिक तत्त्व से कम पवित्र समझता था। प्रकृति के भिन्न-भिन्न प्राणियों में सम-श्रेणिकता का पता लगाना और नानात्व में एकत्व का परिदर्शन करना उसके समीप परमात्मा के गुणों को पुनः-पुनः चिंतन करना था।

अवसर प्राप्त होने पर इस मठ में एक तीसरा विभाग कला-कौशल और शिल्प-विद्या का भी खोला जायगा, जिसकी न्यूनता के संबंध में इस समय अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

कारीगरी और शिल्प

अमेरिका और योरप के कई बड़े-बड़े विश्वविद्यालय जैसे यल, हार्वर्ड, स्टेनफ़ोर्ड, शिकागो आदि निजी विश्वविद्यालय हैं। बड़े शोक की बात है कि भारतवासी अब भी अपनी शिक्षा के लिये आवश्यकताओं की ओर किंचित् ध्यान नहीं देते और सरकारी शिक्षा-प्रणाली की बेहूदा नक़ल में लगे हुए हैं।

इस चैतन्य मठ में, जिसका राम ने प्रस्ताव किया है, परम आस्तिक और घोर नास्तिक ग्रंथों का स्वागत किया जायगा और उनके गुण-दोष का विवेचन वैज्ञानिक साम्य-दृष्टि से किया जायगा। "सत्य, संपूर्ण सत्य और केवल सत्य" यही इस मठ का मूल-मंत्र होगा।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

नक़द धर्म

(अक्टूबर १९०५ में ग़ाज़ीपुर में दिया हुआ व्याख्यान)

सत्यमेव जयते नानृतम् । (मुण्डकोपनिषद्)

हमारे वेद में लिखा है कि जय सत्य की ही होती है, झूठ की कभी नहीं । साँच को आँच नहीं । दरोग़ को फ़रोग़ नहीं । जहाँ कहीं दुनिया में ऐश्वर्य और सम्पत्ति है, धर्म ही उसका मूल कारण है । हिन्दू कहते हैं कि लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है और वह पतिव्रता है । जहाँ विष्णुजी अर्थात् सत्य होगा, वहीं लक्ष्मी होगी । इसको और किसी की परवाह नहीं । ऐश्वर्य किसी भूगोल की सीमा के आश्रित नहीं, अर्थात् किसी स्थान विशेष में बँधा हुआ नहीं । जो लोग योरप, अमेरिका आदि की उन्नति का कारण वहाँ का शीतल जल-वायु बताते हैं, या जो अन्य देशों की अवनति का कारण वहाँ की चौहद्दी से संबंधित करते हैं, वे भूल करते हैं । अभी दो हज़ार वर्ष नहीं हुए कि इँगलैंड के निवासी रोम आदि देशों में ग़ुलाम बने बिकते थे । आज इँगलैंड इतने बड़े देशों का राज्य कर रहा है । क्या इँगलैंड अपनी पुरानी चौहद्दी से भागकर कहीं आगे निकल गया है ? पाँच सौ वर्ष पहले अमेरिका पृथ्वी के उसी स्थान पर था जहाँ आज है, किन्तु तब से अब तक वहाँ के निवासियों की अवस्था के भेद का अनुमान कीजिए । रोम, यूनान, मिस्र और हमारा भारतवर्ष आज वहीं तो हैं, जहाँ उन दिनों थे, जब कि समस्त पृथ्वी में इनकी विद्या और वैभव की धाक बँधी थी । वैभव (ऐश्वर्य)

देशों और व्यक्तियों की परवाह नहीं करता। जो लोग सत्य पर चलते हैं, केवल उन्हीं की जय होती है। और जब तक सत्य-धर्म पर चलते रहते हैं, उनकी विजय बनी रहती है।

प्यारे! क्षमा करना, राम आपका है और आप राम के हैं। तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं। पूरे प्रेम के साथ सामने आओ। जो कुछ हम कहेंगे, प्रेम से कहेंगे, किन्तु ख़ुशामद नहीं करेंगे। प्रेम यह चाहता है कि मनुष्य ख़ुशामद न करे। राम जापान में रहा, अमेरिका में रहा, योरप के कई मुल्क भी देखे, पर जहाँ जय देखी, सत्य की देखी। अमेरिका जो उन्नति कर रहा है, धर्म पर चलने से कर रहा है। धर्म पर किसी का ठेका (इजारा) नहीं। प्रत्येक स्थान में यह आचरण में आ सकता है। धर्म दो प्रकार का है, एक नक़द, दूसरा उधार। यह एक दृष्टांत से स्पष्ट होगा।

एक मनुष्य ने कुछ धन ज़मीन में गाड़ रक्खा था। उसके लड़के को मालूम हो गया। लड़के ने ज़मीन खोदकर धन निकाल लिया, और ख़र्च कर डाला। किन्तु तोलकर उतने ही वज़न के पत्थर वहाँ रख छोड़े। कुछ दिन के बाद जब बाप ने ज़मीन खोदी और रुपया न पाया, तो रोने लगा—"हाय! मेरी दौलत कहाँ गई?" लड़के ने कहा—"पिताजी, रोते क्यों हो? आपको उसे बर्ताव में तो लाना ही न था। और रख छोड़ने के लिये देख लो, उतने ही तोल के पत्थर वहाँ मौजूद हैं।"

बराये निहादन चे संगो चे ज़र।

अर्थात् रख छोड़ने के लिये जैसे पत्थर वैसे सोना।

धार्मिक वाद-विवाद और झगड़े जो होते हैं, वे नक़द धर्म पर नहीं होते, उधार धर्म पर होते हैं। नक़द धर्म वह है जो मरने के बाद नहीं, किन्तु वर्तमान जीवन से सम्बन्ध रखता है; उधार धर्म एतबारी अर्थात् अन्ध-विश्वास पर निर्भर होता है।

उधार धर्म कहने के लिये है, नक़द धर्म करने के लिये। वह धर्म का भाग जो नक़द है, उस पर सब धर्म सहमत हैं। "सत्य बोलना, विद्या-अध्ययन करना और उसे आचरण में लाना, स्वार्थ से रहित होना, पर-धन वा पर-स्त्री को देखकर अपना चित्त न बिगाड़ना, संसार के लालच और धमकियों के जादू में आकर वास्तविक स्वरूप (ज़ाते-मुतलक़) को न भूलना, दृढ़ चित्त और स्थिर स्वभाव होना, इत्यादि-इत्यादि।" इस नक़द धर्म पर कहीं दो मत नहीं हो सकते। उधार के दावे वाद-विवाद करने की प्रीति रखनेवाले लोगों को सौंपकर स्वयं वर्तमान कर्तव्य नक़द धर्म पर चलनेवाले ही उन्नति और वैभव को पाते हैं। इस बात का अनुभव अन्य देशों में जाने से हुआ।

भारतवर्ष और अमेरिका में क्या भेद है ? यहाँ दिन है, तो वहाँ रात है। वहाँ दिन है, तो यहाँ रात है। जिन दिनों हिन्दुस्तान का सितारा ऊँचा था, अमेरिका को कोई जानता भी न था। आज अमेरिका उन्नति पर है, तो भारतवर्ष की कोई पूछ नहीं। हिन्दुस्तान में बाज़ार आदि में रास्ता बाईं ओर चलते हैं; वहाँ दाईं ओर। पूजा और सत्कार के समय यहाँ जूता उतारते हैं; वहाँ टोपी। यहाँ घरों में राज्य पुरुषों का है; वहाँ स्त्रियों का। इस देश में यह शिकायत है कि विधवा ही विधवा हैं; उस देश में कुमारी ही कुमारी अधिक हैं। हम कहते हैं, "पुस्तक मेज़ पर है"; वे कहते हैं "पुस्तक पर मेज़ है"—"book on the table." हिन्दुस्तान में गधा और उल्लू मूर्खता का चिह्न है; उस देश में गधा और उल्लू भलाई और बुद्धिमत्ता के चिह्न हैं। इस देश में जो पुस्तक लिखी जाती है, वह जब तक आधी के लगभग पहले के विद्वानों के प्रमाणों से न भरी हो, उसका कुछ सम्मान नहीं

होता ; उस देश में पुस्तक की सारी बातें नवीन न हों, तो उसकी कोई क़द्र ही नहीं। यहाँ किसी को कोई लाभदायक बात मालूम हो जाय, तो उसे छिपाकर रखते हैं; वहाँ उसे छापेख़ानों द्वारा प्रकाशित कर देते हैं। यहाँ अधर्म की रूढ़ियों की उपासना अधिक है; वहाँ नक़द धर्म बहुत है। हमारे यहाँ इस बात में बड़ाई है कि औरों से न मिलें, अपने ही हाथ से पकाकर खायँ और सब से अलग रहें; वहाँ पर जितना औरों से मिलें, उतनी ही बड़ाई है। यहाँ पर अन्य देशों की भाषा पढ़ना दोष-पूर्ण समझा जाता है("न पठेत् यावनीं भाषाम्"); वहाँ जितना अन्य देशों की भाषा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उतना ही अधिक सम्मान होता है।

जब राम जापान को जा रहा था, तो जहाज़ पर अमेरिका का एक वयोवृद्ध प्रोफ़ेसर मित्र बन गया। वह रूसी-भाषा पढ़ रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि ग्यारह भाषायें वह पहले भी जानता है। उससे पूछा गया—"इस आयु में यह नवीन भाषा क्यों सीखते हो?" उसने उत्तर दिया—"मैं भूगर्भ-शास्त्र (Geology) का प्रोफ़ेसर हूँ। रूसी-भाषा में भूगर्भ-शास्त्र की एक अनोखी पुस्तक लिखी गई है, यदि मैं उसका अनुवाद कर सकूँगा, तो मेरे देश-वासियों को अत्यन्त लाभ पहुँचेगा। इसलिये रूसी-भाषा पढ़ता हूँ।" राम ने कहा—"अब तुम मौत के निकट हो, अब क्या पढ़ते हो? अब ईश्वर-सेवा करो, तर्जुमा करने में क्या धरा है?" उसने उत्तर दिया—"लोक-सेवा ही ईश्वर-सेवा है—

बंदा हूँ बेख़ुदा मैं, बंदे मेरे ख़ुदा हैं।

इसके साथ यदि यह भी मान लिया जाय कि इस काम को करते-करते मुझे नरक में जाना पड़े, तो मैं जाऊँगा, इसकी

कुछ परवाह नहीं। अगर मुझे घोर नरक के दुःख मिलते हैं, तो हज़ार जान से भी क़बूल हैं, यदि भाइयों को सुख और लाभ मिल जाय। इस जीवन में सेवा के आनन्द का अधिकार मैं मौत के उस पार के डर से नहीं छोड़ सकता।"

गुज़श्ता ख़्वाबो आयन्दा ख़यालस्त ;
ग़नीमत दाँ हमीं दम रा कि हालस्त।

भावार्थ—भूत-काल स्वप्न है, और भविष्य-काल अनुमान है ; और वह समय जो वर्तमान है, उसे ग़नीमत समझ।

यही नक़द धर्म है। भगवद्गीता में बड़ी सुन्दरता से आज्ञा दी है कि

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (२, ४७)

अर्थात् कर्म तो करते ही जाओ, परन्तु फल पर दृष्टि मत रक्खो।

लॉर्ड मेकाले की प्रार्थना थी कि मैं मरूँ तो पुस्तकालय में मरूँ। मैं मरूँ, तो प्यारे की गली ही में मरूँ।

दफ़न करना मुझको कूए-यार में ;
क़ब्रे बुलबुल की बने गुलज़ार में।

भावार्थ—मेरे प्यारे की गली में मुझे गाड़ना, क्योंकि बुलबुल पत्ती की समाधि बाग़ में ही बनती है।

मरें तो कर्तव्य-पालन करते-करते मरें, युद्ध-क्षेत्र में मरें। हिम्मत, आनन्द और उत्साह के साथ प्राण त्याग करें।

एक मनुष्य बाग़ लगाता था। किसी ने पूछा—"बूढ़े मियाँ, क्या करते हो? तुम क्या इसके फल खाओगे? एक पाँव तो तुम्हारा मानो पहले ही क़ब्र में है, क्या तुमको वह फ़क़ीर की बात याद नहीं है—

घर बनाऊँ ख़ाक इस दहशत-कदा में नासिहा !
आये जब मज़दूर, मुझको गोर-कन याद आ गया !"

भावार्थ—ऐ उपदेशक! इस भयंकर संसार में क्या ख़ाक घर बनाऊँ? जब मज़दूर आये, तो मुझे क़ब्र खोदनेवाले याद आ गये।

माली ने उत्तर दिया—"औरों ने बोया था, हमने खाया; हम बोयेंगे, और खायेंगे।" इसी प्रकार संसार का काम चलता है। जितने महापुरुष हो गये हैं, ईसा, मुहम्मद इत्यादि, क्या इन महापुरुषों ने उन वृक्षों का फल स्वयं खाया था, जो वे बो गये? कदापि नहीं। इन महापुरुषों ने तो केवल अपने शरीरों को मानो खाद बना दिया, फल कहाँ खाये? जिन वृक्षों का फल शताब्दियों के बाद लोग आज खा रहे हैं, वे उन ऋषियों की ख़ाक से उत्पन्न हुए हैं। यह सिद्धान्त ही धर्म का वास्तविक प्राण है। यही नियम उस प्रोफ़ेसर के आचरण में पाया गया, जो रूसी-भाषा पढ़ता था।

परिश्रम से संकोच नहीं

जिस समय राम जापान से अमेरिका को जाता था, जहाज़ में कोई डेढ़ सौ जापानी विद्यार्थी थे, जिनमें कुछ अमीरों के घराने के भी थे। पर उनमें शायद ही कोई ऐसा था, जो अपने घर से रुपया ले चला हो। अधिकांश उनमें ऐसे थे कि जहाज़ का किराया भी उन्होंने घर से नहीं दिया था। कोई उनमें से धनाढ्य यात्रियों के बूट साफ़ करने पर, कोई जहाज़ की छत के तख़्ते धोने पर, कोई ऐसे ही अन्य छोटे कामों पर नौकर हो गये थे, और जहाज़ का ख़र्च इस प्रकार पूरा कर रहे थे। पूछने से उनका यह विचार पाया गया कि अपने राष्ट्र का धन विदेशों में जाकर क्यों ख़र्च करें? जहाज का किराया भी जहाज़ का काम करके देते हैं। अमेरिका में जाकर इनमें से कुछ विद्यार्थी तो अमीरों

के घरों में दिन भर मेहनत-मज़दूरी करते थे, और रात को नाइट-स्कूलों में पढ़ते थे, और कुछ रेल की सड़क पर या बाज़ारों में रोड़ी कूटने पर या किसी और काम पर लग गये। ये लोग गरमियों में मज़दूरी करते थे और जाड़ों में कॉलेज की शिक्षा पाते थे।

पये इल्म चूँ शमअ बायद गुदाख्त।

अर्थात् विद्या के लिये मोम-बत्ती की भाँति पिघलना चाहिए।

इसी प्रकार सात-आठ वर्ष रहकर अपने दिमाग़ को अमेरिका की विद्या तथा कला-कौशल से और अपनी जेबों को अमेरिका के रुपये से भरकर ये जापानी विद्यार्थी अपने देश में वापस आते हैं। प्रत्येक जहाज़ में बीसियों और कई बार सैकड़ों जापानी अमेरिका इत्यादि को जाते रहते हैं, हज़ारों बल्कि लाखों जापानी प्रतिवर्ष जहाज़ों में जर्मनी व अमेरिका को जाकर वहाँ से विद्या प्राप्त करके वापस आते हैं। इसका परिणाम आप देख ही रहे हैं। पचास वर्ष हुए, जापान भारतवर्ष से भी नीचा था। आज योरप से बढ़ गया। तुम्हारा हाथ ख़ूब गोरा-चिट्टा है और उसका रुधिर बिलकुल साफ़ है, अगर कलाई पर पट्टी बाँध दोगे, तो हाथ का रुधिर हाथ ही में रहेगा, शरीर के और भागों में नहीं जायगा, किन्तु गन्दा हो जायगा और हाथ सूख जायगा। इसी प्रकार जिन देशों ने यह कहा कि हम ही उत्तम हैं, हम ही अच्छे हैं, हम ही बड़े हैं, हम म्लेच्छों या काफ़िरों से क्यों सम्बन्ध रक्खें, और अपने आप को अलग-थलग कर लिया, उन्होंने अपने आप पर मानो पट्टी बाँधकर अपने तईं सुखा लिया। प्रसिद्ध कहावत है—

बहता पानी निरमला, खड़ा सो गन्दा होय।

आबे-दरिया बहे तो बेहतर ;
इन्साँ रवाँ रहे तो बेहतर।

अर्थात् नदी का जल बहता रहे, तो अच्छा और मनुष्य चलता रहे, तो उत्तम है।

यदि विचार से देखा जाय, तो मालूम होगा कि जिन देशों ने उन्नति की है, चलते ही रहने से की है। अमेरिका के लोगों की स्थिति इस विषय में देखिए। औसतन् ४५००० अमेरिकन प्रतिदिन पैरिस में रहते हैं, झुंड-के-झुंड आते हैं और जाते हैं। कोई ज़रा-सा नवीन आविष्कार या नई चीज़ फ्रांस में देखी, तो झट अपने देश में पहुँचा दी। प्राचीन विद्याओं और कला-कौशलों के सीखने में कोई कमी नहीं। हर मौसम अर्थात् शरद्-ऋतु में कोई ८०,००० अमेरिकन मिस्र में आते-जाते हैं। मीनारों को देखते हैं। ४० फ़ी सदी अमेरिकन सारी दुनिया घूम चुके हैं। इस तरह ये लोग जहाँ विद्या होती है, वहाँ से लाकर अपने देश में पहुँचा देते हैं। जर्मनीवालों की भी यही दशा है। अमेरिका से आते समय राम जर्मन जहाज़ पर सवार था। उसमें लगभग तीन सौ मनुष्य फ़र्स्ट क्लास के यात्री होंगे। उनमें प्रोफेसर, ड्यूक, बैरन, और सौदागर लोग शामिल थे। दिन के समय साधरणतः राम जहाज की सब से ऊँची छत पर जाकर बैठता था, एकान्त में पढ़ता-लिखता था या ध्यान-विचार में लग जाता था, किन्तु जर्मन लोग जहाज के ऊपर छत पर चढ़कर राम को नीचे लाते थे और राम के व्याख्यान कराते थे। राम को विदेशी समझकर उसके साथ काफिर या म्लेच्छ का बर्ताव तो न था, किन्तु यह ख़्याल था कि जितना भी ज्ञान इस विदेशी से मिल सकता है, ले लें। संयुक्त-प्रदेश अमेरिका में सब से पहला नगर जो राम ने देखा, वह सियाटल वाशिंग्टन है। वहाँ वाशिंग्टन युनिवर्सिटी ने

राम को हिन्दू-दर्शन-शास्त्र पर व्याख्यान देने को निमन्त्रण दिया। व्याख्यान के बाद एक युवक प्रोफ़ेसर से मिलना हुआ, जो अभी-अभी जर्मनी से वापस आया था। राम ने पूछा—"जर्मनी क्यों गये थे ?" उसने जवाब दिया—"वनस्पति-शास्त्र और रसायन-शास्त्र में अपनी युनिवर्सिटी की जर्मन-युनिवर्सिटियों से तुलना करने गया था।" और साधारण रीति से इसका परिणाम यह सुनाया कि दस वर्ष का समय हुआ, जर्मनी हमसे बढ़कर थी, किन्तु आज हम उससे कम नहीं हैं।

"पीर शो बियामोज़" अर्थात् वृद्धावस्था पर्यन्त पढ़ते ही जाओ। जान-तोड़ परिश्रम के साथ विदेशियों से सीख-सीखकर उन लोगों ने विद्या को पाया और बढ़ाया है।

यह विचार ठीक नहीं कि अमेरिका के लोग डालर (रुपया) के दास हैं, बल्कि विद्या के पीछे डालर स्वयं आता है। जो लोग अमेरिकावालों पर यह कलंक लगाते हैं कि उनका धर्म नक़द धर्म नहीं, बल्कि 'नक़दी' धर्म है, वे या तो अमेरिका की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ हैं, या नितान्त अन्यायी हैं, और उन पर यह कहावत ठीक बैठती है कि "अंगूर अभी कच्चे हैं, कौन दांत खट्टे करे।"

केलीफ़ोर्निया में एक स्त्री ने अठारह करोड़ रुपया देकर एक विश्वविद्यालय स्थापित किया। इसी प्रकार विद्या के बढ़ाने-फैलाने के लिये प्रति वर्ष करोड़ों का दान दिया जाता है। भारतवर्ष की ब्रह्मविद्या का वहाँ इतना सम्मान है कि जैसा वेदान्त अमेरिका में है, वैसा व्यावहारिक वेदान्त भारतवर्ष में आजकल नहीं है। उन लोगों ने यद्यपि हमारे वेदान्त को पचा लिया है और अपने शरीर और अन्तःकरण में खपा लिया है, किन्तु वे हिन्दू नहीं बन गये। वैसे ही हम उनकी विद्या और

कला-कौशल को पचाकर भी अपनी राष्ट्रीयता स्थिर रख सकते हैं। वृक्ष बाहर से खाद लेता है, किन्तु खुद खाद नहीं हो जाता। वह बाहर की मिट्टी, जल, वायु, तेज को खाता और पचाता है किन्तु मिट्टी, जल, वायु आदि नहीं हो जाता। जापानियों ने अमेरिका और योरप के कला-कौशल पचा लिए, किन्तु जापानी बने रहे। देवताओं ने अपने कच (बृहस्पति के पुत्र) को राक्षसों के पास भेजकर उनकी संजीवनी-विद्या सीख ली, किन्तु इससे वे राक्षस नहीं हो गये। इसी तरह तुम योरप और अमेरिका जाकर उनकी विद्या सीखने से ग़ैर-हिन्दू या ग़ैर-हिन्दुस्तानी नहीं हो सकते। जो लोग विद्या को भूगोल की हदबंदी में डालते हैं— "ओह! यह हमारी विद्या है, वह ग़ैर लोगों की विद्या है। ग़ैर लोगों की विद्या के हमारे यहाँ आने में पाप होगा, और हाय! हमारी विद्या और लोग क्यों ले जायँ!" ऐसे विचारवाले लोग अपनी विद्या को घोर अविद्या में बदलते हैं। इस कमरे में प्रकाश है, यह प्रकाश अत्यंत मनोरंजक और सोहावना है। अगर हम कहें, यह प्रकाश हमारा है, हमारा है, हमारा, हाय! यह कहीं बाहर के प्रकाश से मिलकर अपवित्र न हो जाय। और इस विचार से अपने प्रकाश की रक्षा करते हुए हम चिक़ें गिरा दें, परदे डाल दें, किवाड़ें भेड़ दें, खिड़कियाँ लगा दें, रोशनदान बन्द कर दें, तो हमारा प्रकाश एकदम काफ़ूर हो जायगा, नहीं-नहीं, काली कस्तूरी हो जायगा, अर्थात् अँधेरा ही अँधेरा फैल जायगा। हाय! हम लोगों ने भारतवर्ष में यह ग़लत पालिसी क्यों स्वीकार कर ली।

हुब्बुल्वतन अज़ मुल्के-सुलेमाँ ख़ुश्तर;
ख़ारे-वतन अज़ सुम्बुलो-रैहाँ ख़ुश्तर।

अर्थात् स्वदेश तो सुलेमान के देश से भी प्यारा होता है। स्वदेश

का काँटा तो सुम्बुल और रैहाँ (सुगंधित पौधा और घास) से भी उत्तम होता है।

ऐसा कहकर स्वयं तो काँटा हो जाना और देश को काँटों का वन बना देना देश-भक्ति नहीं है। साधारणतः एक ही प्रकार के वृक्ष जब इकट्ठे गुञ्जान झुंडों में उगते हैं, तो सब कमज़ोर रहते हैं। इनमें से किसी को ज़रा अलग बो दो, तो बहुत मज़बूत और मोटा हो जाता है। यही दशा जातियों की है। कश्मीर के विषय में कहते हैं—

अगर फ़िरदोस बर रूए ज़मीनस्त ;
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त।

अर्थात् यदि पृथिवी पर स्वर्ग है, तो यही है, यही है, यही है।

किन्तु वे कश्मीरी लोग जो अपने फ़िरदोस (happy valley) अर्थात् स्वर्ग को छोड़ना पाप समझते हैं, निर्बलता, निर्धनता और अज्ञानता में प्रसिद्ध हो रहे हैं ; और वे बहादुर कश्मीरी पंडित जो इस पहाड़ी स्वर्ग से बाहर निकले, मानो सचमुच स्वर्ग में आ गये। उन्होंने, जहाँ गये, अन्य भारतवासियों को हर बात में मात कर दिया। उनमें से सब ऊँचे-ऊँचे पदों पर विराजमान हैं। जब तक जापानी जापान में रहे, निर्बल और गिरे हुए थे, किन्तु जब वे अन्य देशों में जाने लगे, वहाँ की वायु लगी, बलवान् हो गये। योरप के निर्धन, ग़रीब और प्रायः अधम स्थिति के लोग जहाज़ों पर सवार होकर अमेरिका जा बसे। अब वे लोग दुनिया की सबसे बलिष्ठ शक्ति हैं। कुछ भारतवासी भी बाहर गये। जब तक अपने देश में थे, कुछ पूछ न थी; अन्य देशों में गये, तो उन बढ़ी-चढ़ी जातियों में भी प्रथम वर्ग में गिने गये और बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

हैं कि उनके जहाज़ों पर छोटे दर्जे के यात्रियों के लिये खाने-पीने का यथोचित प्रबन्ध नहीं है।" ज़रा ख़्याल कीजिएगा, एक निर्धन यात्री लड़का, जिसका जहाज़ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, वह अपना निज का द्रव्य इसलिये अर्पण कर रहा है कि कहीं कोई उसके देश के जहाज़ों को भी बुरा न कहे। यह लड़का अपने जीवन को देश से पृथक् नहीं मानता। सारे देश के अस्तित्व को व्यावहारिक रूप में अपना अस्तित्व अनुभव कर रहा है। क्या भक्ति है! क्या प्राण-समर्पण है! यह है व्यावहारिक एकता! यह है नक़द धर्म! इस व्यावहारिक एकता के विना उन्नति और कल्याण का कोई उपाय नहीं।

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये ;
जीता है वह जो मर चुका इन्सान के लिये।

आपको याद होगा कि जापान में जब ज़रूरत पड़ी कि रूसियों के बल को रोकने के लिये कुछ जहाज़ समुद्र में डुबो दिये जायँ, तो राजा मिकाडो ने कहा कि "मैं प्रजा में से किसी को विवश नहीं करता, किन्तु जिनको ऐसे जहाज़ों के साथ डूबना स्वीकार है, वे अपने आप को वालंटियर करें (ख़ुद अपनी इच्छा प्रकट करें) और अर्ज़ियां पेश करें। हज़ारों अर्ज़ियाँ आवश्यकता से भी अधिक एकदम आ गईं। अब इनमें चुनाव की ज़रा दिक़्क़त थी। किन्तु कुछ जापानी युवकों ने अपने शरीरों से ख़ून निकालकर ख़ून से लिखे हुए प्रार्थना-पत्र पेश किये थे कि वे शीघ्र स्वीकार हो जायँ। अन्त में रुधिर से लिखी हुई अर्ज़ियों को अधिक मान दिया गया। जब जहाज़ों के साथ वे लोग डूब रहे थे, तो इनमें दो-एक कप्तान यदि चाहते, तो अपनी जान बचा भी

सकते थे। किसी ने कहा—"कप्तान साहब! आप काम तो कर चुके, अब जान बचाकर जापान चले जाओ।" तो मौत की हँसी उड़ाते हुए कप्तान साहब ने तिरस्कार से उत्तर दिया—"क्या मैंने वापस जाने के लिये यहाँ आने की अर्ज़ी दी थी?"

ईं जा जुज़ ईं कि जाँ बसिपारंद चारा नेस्त।

अर्थात् यहाँ सिवा जान देने के कोई और उपाय नहीं है।

शूर वीरता का अर्थ यह नहीं कि वापस लौटा जाय—

शेर सीधा तैरता है, वक़्ते-रफ़्तन आब में।

अर्थात् पानी में धारा के अन्दर शेर सीधा तैरता है।

यह है नक़द-धर्म, यह है व्यावहारिक वेदान्त।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। (गीता २, २३)

मुझको काटे कहाँ है वह तलवार?
दाग़ दे मुझको है कहाँ वह नार?
ग़र्क़ मुझको कहाँ करे पानी?
बाद में ताब कब्र सुखाने की?
मौत को मौत आ न जायेगी;
क़स्द मेरा जो करके आयेगी!

अर्थात् कहाँ है वह तलवार जो मुझे मारे? कहाँ है वह अग्नि जो मुझे जला दे? कहाँ है वह जल जो मुझे डुबो दे? कहाँ है वह वायु में शक्ति जो मुझे सुखा दे? मृत्यु जब मेरी अभिलाषा करके आयेगी, तो उसकी ही मृत्यु हो जायगी!

पदार्थ-विद्या की जाँच के लिये अमेरिका में जीवित मनुष्य के काटने की आवश्यकता पड़ी। अनेक नवयुवक अपनी छातियाँ खोलकर खड़े हो गये कि लो चीरो, हमें काटो, इंच-इंच करके हमारे प्राण जायँ, हमें जीते-जी कटना हज़ार बार मुबारक है, यदि इससे विद्या की उन्नति हो और दूसरों का

कल्याण हो। अब इसे हम प्रेम कहें कि वीरता? यह है नक़द धर्म, यह है व्यावहारिक वेदांत।

संयुक्त प्रदेश अमेरिका के प्रेसिडेंट एब्राहम लिंकन के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार जब वह अपने मकान से दरबार को आ रहा था, मार्ग में क्या देखता है कि एक सुअर कीचड़ में फँसा हुआ अधमरा हो रहा है। बहुत ही प्रयत्न कर रहा है, किन्तु किसी तरह निकल नहीं सकता, और दुःख से चिल्ला रहा है। प्रेसिडेन्ट से देखा न गया। सवारी से उतरकर सुअर को बाहर निकाला और उसका प्राण बचाया। सब वस्त्रों पर कीचड़ के छींटे पड़ गये, किन्तु परवाह न की और उसी दशा में दरबार में आया। लोगों ने सबब पूछा, और जब उपर्युक्त घटना का पता लगा, तो सबने बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा कि आप बड़े दयालु और ईश्वर-भक्त हैं। प्रेसिडेन्ट ने कहा—"बस-बस, अधिक मत बोलो, मैंने दया-मया कुछ नहीं की। छूत की बीमारी की तरह उस सुअर के दर्द ने मुझमें अपना असर पैदा किया, अतः मैं तो केवल अपना ही दुःख दूर करने के लिये उसको निकालने गया था।" वाह! कैसा विश्वव्यापी प्रेम है! कैसी सहानुभूति की एकता है!

ख़ूँ रगे-मजनूँ से निकला, फ़स्द लैली की जो ली।

अर्थात् लैली के शरीर की नस खोलते ही मजनूँ के शरीर से रुधिर बहने लगा।

कैसी व्यावहारिक एकता है!

पत्ती को फूल की लगा सदमा[1] नसीम[2] का;
शबनम[3] के क़तरे आँख से उनकी टपक पड़े।

---

१ ठेस। २ सवेरे की ठंढी हवा। ३ ओस।

जीवित-धर्म (नक़द धर्म) का तत्त्व यह है कि तुम समस्त देश की आत्मा को अपनी आत्मा समझो। धर्म का यह तत्त्व जिन देशों में व्यवहार में आता है, वे उन्नति कर रहे हैं ; जिन राष्ट्रों में नहीं आया, वे गिर रहे हैं। अपने देश के विषय में अब एक बात बड़े खेद से कहनी पड़ेगी। इन दिनों हांगकांग में सिक्खों की फ़ौज है, इसके पहले पठानों की फ़ौज थी। हांगकांग में सिक्खों को, (हमें ठीक याद नहीं) शायद एक पौंड प्रत्येक मनुष्य को वेतन मिलता है, और साधारण फ़ौजी सिक्खों को इससे भी कम, शायद दस रुपया (दो-तिहाई पौंड) मासिक वेतन मिलता है। हांगकांग में पठानों को गोरों के बराबर प्रति व्यक्ति शायद तीन-तीन पौंड मिलता था। चीन के युद्ध के समय जब सिक्ख लोग वहाँ गये, तो पठानों का यह तिगुण से भी अधिक वेतन उन्हें बुरा लगा। ब्रिटिश पार्लामेन्ट में उन्होंने प्रार्थना-पत्र भेजे कि पठानों को तो तीन-तीन पौंड मिलता है, क्यों नहीं हमें आजकल के दो-तिहाई पौंड के स्थान पर एक पूरा पौंड मासिक दिया जाता और उनकी जगह भरती कर लिया जाता? हिन्दुस्तान की सरकार और विलायत की सरकार में इन प्रार्थना-पत्रों के घूमने-फिरने के बाद पठानों से पूछा गया कि क्या तुम लोगों को तीन पौंड के बदले एक पौंड वेतन लेना स्वीकार है? एक पठान ने भी इसको अंगीकार नहीं किया। अन्त में पठानों की सब फ़ौज मौक़ूफ़ की गई और सब पठान जीविका-रहित हो गये। भोले सिक्खों ने इतना न सोचा कि अन्त में ये पठान भी हमारे ही देश के हैं? यह सहानुभूति न आई कि इनकी जीविका मारी गई? यह दया न आई कि भाइयों का गला कट गया? हाय ईर्ष्या और

देश की फूट ! ये भूखों मरते पठान जीविका की तलाश में अफ्रीक़ा को गये और सुमालीलैंड के मुल्ला के साथ होकर इन्हीं सिक्खों से लड़े। इस युद्ध में बिना लड़े ही केवल जल-वायु के कठोर प्रभाव ही से सिक्खों की वह गति हुई जिसका ठिकाना नहीं। लक़वा हो गया, गर्दनें मुड़ गईं, शरीर सूख गये, ज्वर आदि ने निढाल कर दिया। सच कहा है, जो औरों की मौत का उपाय करता है, वह आप ही उस उपाय से मरता है।

करदनी खवेश आमदनी पेश ;
चाहकन्दा रा चाह दर पेश।

अर्थात् जैसी करनी वैसी भरनी। कूप खने जो और को, ताको कुआँ तयार।

जापान में एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी शिक्षा पाता था। वह यंत्र-शास्त्र की एक पुस्तक पुस्तकालय से माँगकर ले आया। आवश्यक लेख या उसके भावार्थ को तो उसने कापी पर उतार लिया, किन्तु मैशीनों के नक़शों या चित्रों की वह नक़ल न कर सका। उसने यह न सोचा कि और लोग भी इस पुस्तक से लाभ उठानेवाले हैं, यह न ख़याल किया कि इस कार्य से मेरे देश की अपकीर्ति होगी, झट पुस्तक से वे पन्ने, जिन पर चित्र थे, फ़ाड़ लिए और पुस्तक वापस कर दी। पुस्तक बहुत मोटी थी, भेद न खुला। किन्तु छिपे कैसे ? सत्य भी कभी छिपता है ? एक दिन एक जापानी विद्यार्थी उसके कमरे में आया। मेज़ पर उस पुस्तक के फटे हुए पन्ने पड़े थे। उन्हें देखकर उसने अफ़सर को सूचना दे दी। और वहाँ नियम हो गया कि अब किसी हिन्दुस्तानी विद्यार्थी को कोई पुस्तक न दी जाय। डूब मरने का स्थान है ! एक तो आपने उस जापानी विद्यार्थी की बात सुनी, जो जहाज़

पर हिन्दुस्तानी लोगों के लिये खाना लाया था, और एक इस हिन्दुस्तानी की करतूत देखी। जापानी अपना सर्वस्व दे देने को तैयार है ताकि उसके देश पर कलंक न लगने पाये और हिन्दुस्तानी विद्यार्थी अपना स्वार्थ चाहता है, समस्त देश चाहे बदनाम हो या कलंकित! हाथ शरीर से यह नहीं कह सकता कि मैं अकेला या सबसे पृथक् हूँ, मेरा रुधिर और है और सारे शरीर का रुधिर और। इस भेद-भाव से यह ख़याल उत्पन्न होगा कि हाय! कमाऊँ तो मैं, और पले सारा शरीर। इस स्वार्थ-सिद्धि के लिये, हाथ के वास्ते केवल एक ही उपाय हो सकेगा, वह यह कि जो रोटी कमाई है, उसे सारे शरीर के लिये मुँह में डालने के बदले हाथ अपनी हथेली पर बाँध ले या नाख़ूनों में घुसेड़ ले। पर क्या यह स्वार्थपरायणता की चाल लाभदायक होगी? अलबत्ता एक उपाय और भी है कि शहद की मक्खी या भिड़ से हाथ अपनी उँगलियाँ डसवा ले। इस तरह सारे शरीर को छोड़कर अकेला हाथ स्वयं बहुत मोटा हो जायगा। किन्तु यह मोटापन तो सूजन है, बीमारी है। इसी तरह जो लोग राष्ट्र का हित अपना हित नहीं समझते, अपने आपको राष्ट्र से भिन्न मानते हैं, ऐसे स्वार्थियों को सिवा सूजन-रोग के और कुछ हाथ नहीं आता। वही हाथ शक्तिमान् और बलिष्ठ होगा, जो कान, नाक, आँख, पैर आदि सारे शरीर की आत्मा को अपनी आत्मा मानकर आचरण करता है, और मनुष्य वही फले-फूलेगा जो सारे राष्ट्र की जान को अपनी जान मान लेता है।

अमेरिका का कुछ विस्तृत वृत्तान्त

अमेरिका में पहली आश्चर्यजनक बात यह देखी गई कि एक जगह पति तो प्रोटेस्टेंट मत का था और पत्नी रोमन कैथोलिक। चित्त में यह विचार आया कि हमारे भारत में इस प्रकार

के सम्प्रदाय-भेदवाले लोग (जैसे आर्यसमाजी और सनातनधर्मी) एक मोहल्ले में कठिनता से दिन काटते हैं, इन पति-पत्नी का एक घर में कैसे निर्वाह होता होगा ? पूछने से मालूम हुआ कि बड़े प्रेम से रहते-सहते हैं। रविवार के दिन पति पहले पत्नी को उसके रोमन-कैथोलिक गिरजे में साथ जाकर छोड़ आता है, उसके बाद वह स्वयं अपने दूसरे गिरजे में जाता है। पति से बातचीत हुई, तो वह कहने लगा—"जी, मेरी पत्नी के धर्म का प्रश्न तो उसके और परमात्मा के मध्य है। मैं कौन हूँ हस्तक्षेप करनेवाला ? मेरे साथ उसका व्यवहार बिलकुल पवित्र है, परमात्मा के साथ उसका हिसाब-किताब वह जाने।" क्या खूब !

अमेरिका में राष्ट्रीय एकता के सामने धार्मिक मतभेद की कोई गिनती नहीं। भारतवर्ष का आर्यसमाजी हो, सिक्ख हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, अमेरिका में 'हिन्दू' ही कहलाता है। अमेरिकनों के हृदय में राष्ट्रीय एकता इतनी समा रही है कि वे हमारे यहाँ के इतने भारी मतभेदों के भूल जाने में ज़रा देर नहीं लगाते। भारतवर्ष के कुछ धर्मानुयायी यदि यह जानते कि अन्त में अन्य सभ्य-देशों में हमें हिन्दू ही कहलाना है, तो 'हिन्दू' शब्द पर इतने झगड़े न करते और इस नाम से इतनी घृणा न करते।

उस देश के शक्तिशाली होने का एक कारण यह भी है कि वहाँ ब्रह्मचर्य है। वहाँ मनुष्य-बल को व्यर्थ नहीं खोने देते। सामान्यतः २० वर्ष पर्यंत तो लड़के-लड़की को विचार भी नहीं आता कि विवाह क्या वस्तु है। इसका एक कारण विचारपूर्वक देखने से यह मालूम हुआ कि बालक और बालिकाएँ बचपन से इकट्ठे खेलते-कूदते, एक छत के नीचे लिखते-पढ़ते और साथ-साथ रहते-सहते हैं, और फिर साथ ही

साथ कॉलेजों में शिक्षा पाते हैं। अतएव आपस में भाई-बहन का-सा सम्बन्ध बना रहता है, और उनके अन्तःकरण शुद्धता और पवित्रता से भरे रहते हैं। वहाँ लड़कियों के शरीर लड़कों के शरीरों के समान ही बलवान् होते हैं, इसलिये युवावस्था में उनकी सन्तति भी बलवान् होती है। यदि पुरुष बलवान् है और स्त्री दुर्बल, तो इसका आधा प्रभाव सन्तान पर होगा।

एक बार जिनेवा झील (Lake Geneva) के तट पर जब राम रहता था, एक १३ वर्ष की बालिका तैरते-तैरते तीन मील तक चली गई। किश्ती पीछे-पीछे थी कि यदि डूबने लगे, तो सहायता की जाय, परन्तु कहीं सहायता की आवश्यकता न पड़ी। जब लड़कियों की यह दशा है, तो भविष्य में उनकी सन्तान क्यों न बलवान् होगी? और जब शरीर स्वस्थ है, तो मन क्यों न स्वस्थ (पवित्र) होगा? उनके ब्रह्मचर्य का और भी एक कारण है। दुर्बलता से पाप होता है, और अजीर्णता से अशुद्धि होती है। जब मेदा ठीक न हो, तो चिन्ता और फ़िक्र स्वाभाविक ही पीछे लग जाते हैं। स्वास्थ्य ठीक नहीं है, तो बात-बात में क्रोध आता है। श्रुति में लिखा है कि बलहीन इस आत्मा को नहीं जान सकता—

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" (मुंडक उप० ३. २. ४)

कमज़ोर की दाल ईश्वर के घर में भी नहीं गलती। जिसके अन्दर शारीरिक और आत्मिक बल नहीं है, वह ब्रह्मचर्य का कब पालन कर सकता है? और यह भी स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य से हीन मनुष्य शारीरिक और आत्मिक बल से रहित हो जाता है।

वहाँ कॉलेजों में क्या स्थिति है? बी० ए०, एम्० ए० और डॉक्टर ऑफ़ फ़िलॉसोफ़ी की उपाधि पाने पर्यन्त विद्यार्थियों

को शारीरिक व्यायाम का शिक्षण साथ-साथ दिया जाता है। युद्ध-विद्या, कृषि-विद्या, लोहारी, बढ़ई तथा थवई का काम बराबर सिखाया जाता है।

मनुष्य के अन्दर तीन बड़े महकमे (कार्यालय) हैं। एक कर्मेन्द्रिय, दूसरा ज्ञानेन्द्रिय और तीसरा अन्तःकरण। इनको अँगरेज़ी में 'ह'कार से आरम्भ होनेवाले तीन शब्दों में वर्णन कर सकते हैं। हैंड (Hand—कर्मेन्द्रिय), हेड (Head—ज्ञानेन्द्रिय) और हार्ट (Heart—अन्तःकरण)। ज्ञानेन्द्रियों से बाहरी ज्ञान अन्दर जाता है और बाहरी पदार्थ अन्दर असर करते हैं। कर्मेन्द्रियों (जैसे हाथ-पैर) से अन्दर की शक्ति बाहर प्रभाव डालती है। कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ यदि परस्पर योग्य प्रमाण से बढ़ती रहें और उन्नति करती जायँ, तो उत्तम है। यदि बाहर से ज्ञान को ठूँसते जायँ और अन्दर के ज्ञान तथा बल को बाहर न निकालते रहें, तो दशा वैसी ही हो जाती है कि मनुष्य खाता तो रहे, किन्तु उसके शरीर से कुछ बाहर न निकल सके। इसका फल होगा अक़्ली बदहज़्मी और रूहानी क़ब्ज़। यह शिक्षा नहीं है, रोग है।

अमेरिका में साधारण रीति से युनिवर्सिटी की शिक्षा का यह मन्तव्य और उद्देश्य है कि स्वदेश की वस्तुएँ काम में लाई जायँ, अर्थात् ज़मीन, खनिज, वनस्पति और अन्य पदार्थ इत्यादि का उपयोग और अधिक मूल्यवान् बनाना मालूम हो जाय। जितने कला-कौशल सिखाये जाते हैं, वे प्रत्यक्ष व्यवहार में उपयोगी और लाभदायक होते हैं। कोई विद्यार्थी रसायन-शास्त्र व्यर्थ नहीं पढ़ेगा, यदि उसको रसायन-शास्त्र को व्यावहारिक उपयोग में लाने की कला भी साथ न सीखना हो।

एक धार्मिक कॉलेज में राम का व्याख्यान हुआ।

व्याख्यान के बाद कॉलेज के लोगों ने अपनी जंगी क़वायद दिखलाई, और कॉलेज के सैनिक जय-घोषों से व्याख्यानदाता का स्वागत किया। राम ने पूछा—"यह क्या ? कॉलेज तो धार्मिक और शिक्षा सैनिक ?" प्रिन्सिपल साहब ने उत्तर दिया—"धर्म के अर्थ हैं, देह और देहाध्यास को हज़रत ईसा के समान सलीब पर चढ़ा देना और अहं-भाव को मिटा देना, जान को देश के लिये हथेली पर उठाये फिरना। यह प्राण-समर्पण और सच्ची शूरवीरता की स्पिरिट सैनिक शिक्षा से आती है।"

अब चित्त की कोमलता और अन्तःकरण की शुद्धि की शिक्षा की दशा देखिए। एक विश्वविद्यालय में राम गया, जो केवल विद्यार्थियों और अध्यापकों की कमाई से चल रहा था। विद्यार्थी वहाँ फ़ीस आदि कुछ नहीं देते हैं, और अन्य विषयों की शिक्षा के साथ-साथ वे अध्यापकों के अधीन कॉलेज की ज़मीन या यंत्रों पर काम भी करते हैं। अध्यापक नवीन-नवीन प्रयोग और आविष्कार करते हैं और विद्यार्थियों को करना सिखाते हैं। ज़मीन की अनोखे ढंग की और निराली पैदावार तथा नवीन कारीगरी की आमदनी से सब ख़र्च निकल आते हैं। राम की उपस्थिति में एक कमरे में विद्यार्थियों का आपस में झगड़ा हो पड़ा। प्रेसिडेन्ट के पास यह मुक़द्दमा गया। प्रेसिडेन्ट ने उस कमरे में सब काम बन्द करा दिए और प्यानो बाजा बजाना शुरू करा दिया। १५ मिनट में मुक़द्दमा फ़ैसल हो गया और अपने आप शांति हो गई। वाह ! जिनके अन्दर शांति-रस भरा है, उनके अन्दर के मेल और शांति को उकसाने के लिये बाहरी संगीत ही काफ़ी बहाना हो जाता है। और कैसा प्रबन्ध है ; वायु में सतोगुण भर दिया, दिलों की खटपट आप ही दूर हो गई !

शिकागो विश्वविद्यालय के एक अंडर ग्रैजुएट ने राम के कुछ व्याख्यानों पर नोट लिए, और थोड़े दिनों में अपनी ओर से घटा-बढ़ा के उनकी एक पुस्तक बनाकर विश्वविद्यालय के भेंट की। इस विद्यार्थी को फ़ौरन् एक दर्जे की तरक़्क़ी दे दी गई। यह नहीं देखा गया कि इसने 'मिल' और 'हेमिल्टन' की पुस्तकों से अपने मस्तिष्क को 'लेटर-बैग' बनाया है कि नहीं। अवश्यमेव सच्ची शिक्षा का आदर्श यह है कि हम अन्दर से कितनी विद्या बाहर निकाल सकते हैं, यह नहीं कि बाहर से अन्दर कितनी डाल चुके हैं।

राम एक समय वहाँ शास्ता-पर्वत के जंगलों में रहता था। कुछ मनुष्य मिलने आए। उनके साथ एक बारह वर्ष की लड़की भी थी। सब राम के उपदेश को ध्यानपूर्वक सुनते रहे, किन्तु थोड़ी देर के लिये लड़की अलग जाकर बैठ गई। जब वापस आई, तो एक काग़ज़ पेश किया। यह क्या था? राम का सारा उपदेश, जिसे वह अँगरेज़ी कविता में पिरो लाई। बाद में यह कविता वहाँ के पत्रों में छप भी गई। बालकों की यह बुद्धि और योग्यता उनको स्वतन्त्र रखने का परिणाम है।

मनुष्य चाहे बच्चा हो या बूढ़ा, वह बात करनेवाला पशु कहलाता है। वाक्-शक्ति तो सवार है, और पशु-वृत्ति मानो सवारी का घोड़ा। जब हम बालकों की वाक्-शक्ति को प्रेम से समझा-कर उनसे काम नहीं लेते, बरन् डाट-डपट और बुरा-भला कहकर उनपर शासन करते हैं, तो मानो पशु-वृत्ति के घोड़े को लाठी के बल से सवार (वाक्-शक्ति) की रानों के तले से निकाल ले जाना है। ऐसी अवस्था में बच्चे के अन्दरवाले को क्रोध क्यों न आये? बालकों को डाटना केवल पशु-वृत्ति से काम लेना है, और उनमें उस अंश का अपमान करना है,

जिसके कारण मनुष्य संसार में श्रेष्ठ कहलाता है। सख़्ती करना या झिड़कना उनके भीतर की श्रेष्ठता का अपमान करना है। बिना समझाये या बिना कारण बतलाये बालक पर किसी प्रकार की निषेधक आज्ञा करना कि "ऐसा मत करो, वैसा मत करो" उसे उस काम करने की उत्तेजना स्वतः देना है। जिस समय परमात्मा ने हज़रत आदम को आज्ञा दी कि "अमुक वृक्ष का फल मत खाना" तो उसी निषेध के कारण हज़रत आदम के दिल में यह बुरा विचार उत्पन्न हुआ। उस स्वर्गोद्यान (बाग़े-जन्नत) में हज़ारों वृक्ष थे, किन्तु जब निषेध किया गया कि "यह न खाना", तो स्वतः उसके खाने की इच्छा उत्पन्न हुई। बहुत ही आवश्यक विज्ञापनों का समाचार-पत्रों में यह शीर्षक होता है—"इसको मत पढ़ना।"

किसी मनुष्य ने एक महात्मा से मन्त्र चाहा। महात्मा ने मन्त्र बतलाकर कहा—"तीन माला जपने से मन्त्र सिद्ध हो जायगा। परन्तु शर्त यह है कि ख़बरदार! माला जपते कहीं बन्दर का ख़्याल न आने पाये।" थोड़े अनुभव के बाद वह बेचारा साधक महात्मा से आकर कहने लगा—"गुरू महाराज! बन्दर मेरे तो कहीं स्वप्न में भी न था, किन्तु आपके ख़बरदार करने से अब तो बन्दर का ख़्याल मुझे छोड़ता ही नहीं।" चित्त में यह उलटा प्रभाव डालनेवाली शिक्षा का ढङ्ग अमेरिका में नहीं है। बालकों की शिक्षा वहाँ 'किंडरगार्टन' की पद्धति पर होती है। अध्यापक बालकों के साथ खेलते, कूदते, गाते, नाचते, पढ़ाते चले जाते हैं, और बालक हँसी के साथ अभ्यास करते जाते हैं। उदाहरणार्थ बालकों को जहाज़ का पाठ पढ़ाना है। एक-एक लकड़ी का जहाज़ बना हुआ प्रत्येक बालक की कुरसी के आगे रक्खा हुआ है और बाँस की फाँकें आदि पास धरी हैं,

जिनसे नया जहाज़ बन सके। बालकों के साथ मिले हुए अध्यापक या अध्यापिकाएँ कहती हैं "हम तो जहाज़ बनायेंगे, हम तो जहाज़ बनायँगे।" बच्चे भी देखा-देखी कहने लग पड़ते हैं—"हम भी जहाज़ बनायेंगे।" ए लो, सब बैठ गये, एक बालक ने जहाज़ बना दिया, दूसरे ने सफलता पा ली, फिर तीसरे ने बना लिया। जिस किसी को ज़रा देर लगी, अन्य बालकों या अध्यापिका ने सहायता दे दी। फिर बालकों ने बड़ी रुचि के साथ अध्यापिका से स्वयं प्रश्न करने शुरू किये। जहाज़ के इस भाग का क्या नाम है ? वह भाग क्या कहलाता है ? अध्यापिका मस्तूल आदि सब का हाल और नाम बतलाती जाती है, और बालक इस प्रकार जहाज़ के सम्बन्ध की सब बातें मानो अपने आप ही सीख गये। हमारे यहाँ बालक पढ़ते हैं "कील (Keel), कील माने जहाज़ की पेंदी", ऐसा रटते-रटते सर में कील ठुक गई, मगर बालक को ख़बर भी न हुई कि कील क्या चीज़ है, और जहाज़ कैसा होता है ? वहाँ 'पदार्थ' की पहचान पहले कराई जाती है, 'पद' (नाम) पीछे बतलाया जाता है। यहाँ नाम (पद) पहले याद कराते हैं, पदार्थ का चाहे सारी आयु पता न लगे। वहाँ बालक प्रश्न करते रहते हैं (जैसा कि सब जगह बालकों का स्वभाव है), और अध्यापक का कर्तव्य है, उनको पूरे-पूरे उत्तर देते जाना। यहाँ इतने बड़े अध्यापकों को लज्जा नहीं आती कि छोटे-छोटे बच्चों को प्रश्न पूछ-पूछकर हैरान करते हैं। वह पढ़ना क्या है, जिसमें आत्मिक आनन्द न हो। यहाँ शिक्षक को देखकर बालकों का मारे भय के प्राण जाता है, वहाँ बालकों का प्रेम जो शिक्षकों से है, माता-पिता से नहीं। जो प्रसन्नता उन्हें पाठशाला में है, घर में नहीं। पाठशालाओं

में वहाँ फ़ीस नहीं ली जाती, और पुस्तकें सबको मुफ्त दी जाती हैं।

दुकानों की वहाँ क्या दशा है। शिकागो में राम एक दुकान पर बुलाया गया, जिसके फ़र्श का क्षेत्रफल एक तिहाई ग़ाज़ीपुर से कम न होगा और दुकान के नीचे-ऊपर पच्चीस मंज़िलें थीं। जिस मंज़िल पर जाना चाहो, बालाकश (elevator) झट ले जायँगे। हर मंज़िल में नवीन प्रकार का माल भरा हुआ था। करोड़ों के ग्राहक प्रतिदिन आते हैं, किन्तु दुकानवालों का बर्ताव सब के साथ एक समान है, चाहे लाख का ग्राहक हो, चाहे पाँच पैसे का। मूल्य एक ही होगा जो प्रत्येक वस्तु के ऊपर लिखा है। उससे कौड़ी कम नहीं, कौड़ी अधिक नहीं। और सबके साथ हँसमुख, यहाँ तक कि जो कुछ भी न ख़रीदे और दस वस्तुओं के दाम पूछ-पूछकर चला जाय, उसे भी द्वार तक छोड़ने आते हैं, अपने नियमानुसार शिष्टाचार से नमस्कार करते हैं। इस बड़ी दुकान ही पर नहीं, साधारण दुकानों पर भी यही बर्ताव है।

अमेरिका, जापान, इँगलैंड, जर्मनी में पुलीस अत्यन्त सभ्य और प्रजा की सेवक है। प्रजा-रक्षक है, प्रजा-भक्षक नहीं। कुछ श्रोतागण शायद दिल में कह रहे होंगे कि बस बन्द करो, अमेरिकन लोगों की बहुत प्रशंसा कर ली। उनके गीत कहाँ तक गाते जाओगे ? क्या हमें अमेरिकन बनाना चाहते हो ? इस भ्रांतिवालों से राम कहता है कि क्या भारतवासी अमेरिकन बनें ? हर ! हर ! हर ! दूर हो यह विचार जिसके दिल में भी आया हो। परे हटा दो यह आशा, जिस किसी ने कभी की हो। राम का ऐसा विचार कदापि नहीं हुआ, न होगा। अलबत्ता कुछ बातें उन देशों से लेना हम लोगों के लिये ज़रूरी हैं।

यदि हम विनाश के प्रहार से बचना चाहते हैं, यदि हमें हिन्दू बने रहना स्वीकार है, तो हमें उनके कला-कौशल ग्रहण करने होंगे, चाहे वे किसी मूल्य पर मिलें। जब राम अमेरिका में रहा, तो सर पर पगड़ी हिन्दुस्तानी थी, किन्तु बाज़ारों में बर्फ़ होने के कारण पैरों में जूता उसी देश का था। लोगों ने कहा—"जूता भी हिन्दुस्तानी क्यों नहीं रखते ?" राम ने उत्तर दिया—"सर तो हिन्दुस्तानी रक्खूँगा, किन्तु पाँव तुम्हारे ले लूँगा।" राम तो चित्त से यह चाहता है कि आप हिन्दुस्तानी बने रहकर अमेरिकन आदि से बढ़ जायँ, और यह उन राष्ट्रों से दूर रहते हुए नहीं हो सकता। आज बिजली, भाप, रेल, तार इत्यादि देश और काल को मानो हड़प कर गये हैं। दुनिया एक छोटा-सा टापू बन गई है, समुद्र-मार्ग विघ्न-रूप होने के बदले राज-मार्ग हो गया है। जिनको कभी भिन्न देश कहते थे, वे नगर हो गये हैं और पहले के नगर मानो गलियाँ हो रही हैं। आज यदि हम अपने आपको अलग-थलग रखना चाहें और दूसरे राष्ट्रों से भिन्न मानकर अपने ही ढाई चावल की खिचड़ी पकायें, आज बीसवीं शताब्दी में यदि हम मसीह से बीसवीं शताब्दी पहले के रीति और रिवाज बर्तें, आज यदि हम पाश्चात्य देशों के कला-कौशल का मुक़ाबला करना न सीखें, आज यदि हम उधार-धर्म के लड़ाई-झगड़े छोड़कर नक़द धर्म को न बर्तें, तो हम इस तरह से उड़ते हैं जैसे बिजली और धुएँ से देश और काल उड़ गये हैं। भारतवासियो ! अपनी स्थिति को पहचानो।

कंचन होवे कीच में, विष में अमृत होय ;
विद्या नारी नीच में, तीनों लीजे सोय।

जब भारतवर्ष में ऐश्वर्य था, तो भारतवासियों ने अपने

को कूप-मंडूक नहीं बना रक्खा था। जब पुष्कर में यज्ञ हुआ, तो हबशी, चीनी और ईरानी राष्ट्रों के लोगों को निमंत्रण दिया गया। राजसूय यज्ञ के पहले भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव पांडव दूर-दूर के विदेशों में गये। स्वयं रामचन्द्रजी मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार ने समुद्र-पार जाने की मर्यादा बाँधी।

दोश अज़ मसजिद सुए मयख़ाना आमद पीरे-मा ;
चीस्त याराने-तरीक़त बाद अज़ीं तदबीरे-मा ।

अर्थात् कल रात्रि हमारा गुरु मंदिर से मदिरा-गृह में आया। ऐ मर्यादावाले लोगो ! अब हमारा क्या कर्तव्य है ?

उन दिनों तो भारतवर्ष किसी अन्य देश के अधीन भी न था, किन्तु आज अन्य देशों के कला-कौशल सीखने की इसलिये आवश्यकता है कि इनके विना प्राण जाता है। अतः आज भारतवर्ष यदि जीना चाहे, तो अमेरिका, योरप, जापान आदि बाहर की दुनिया से अपने आपको स्वयं छींक न दे। बाहर की हवा लगने से जान में जान आ जायगी। हिन्दू बाहर जायँगे, तो सच्चे हिन्दू बन जायँगे। बाहर जाने से अपने शास्त्र का सम्मान मालूम होगा, और बहुत अच्छी तरह से मालूम होगा, और शास्त्र आचरण में आने लगेगा। तुम अपने आपको संसार से नितान्त विरक्त नहीं बना सकते। जितना तुमने विदेशी लोगों से मुँह मोड़ा, उतना ही उनके दास बनकर रहना पड़ा।

संकल्प-शक्ति

पुराणों में सुना करते और पढ़ा करते थे कि अमुक ऋषि के वर या शाप से अमुक व्यक्ति की दशा बदल गई। योगवाशिष्ठ में शिला में सृष्टि दिखाने का उल्लेख आता है, किन्तु अमेरिका में ऐसे दृश्य आँखों के सामने प्रत्यक्ष गुज़रे। युनिवर्सिटी के मकानों और अस्पतालों में इस प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं।

हज़ारों रोगी केवल संकल्प-बल से अच्छे किये जाते हैं। प्रोफ़ेसर की संकल्प-शक्ति से 'मेज़' का 'घोड़ी' दिखाई देना या 'जेम्स' (James) साहब का डॉक्टर 'पाल' (Paul) हो जाना (व्यक्ति का बदल जाना), पुराने जेम्सपन का उड़ जाना, यह सब राम ने अपनी आँखों देखा।

अद्वैतवाद

संस्कृत में वेदान्त एकत्व (अद्वैत) के असंख्य मस्ती-भरे ग्रंथ हैं, जैसे दत्तात्रेय की अवधूत-गीता, अष्टावक्र-गीता, श्रीशंकराचार्य के स्तोत्र या योगवाशिष्ठ के कुछ अध्याय। फ़ारसी में सबसे बढ़कर अद्वैत (तौहीद) का ग्रन्थ शम्स-तबरेज़ का है, उससे उतरकर मसनवी शरीफ़, शेख़ अत्तार, मग़रबी वग़ैरह। किन्तु अमेरिका में वाल्ट ह्विटमैन (Walt Whitman) का ग्रंथ "लीव्ज़ ऑफ़ ग्रास" (Leaves of Grass) वही अद्वैत की मस्ती और स्वतन्त्रता लाता है, जो अवधूत-गीता, अष्टावक्र-गीता, श्रीशंकराचार्य के स्तोत्र, शम्स-तबरेज़ और बुल्लाशाह की कविता लाते हैं, बल्कि इनसे भी कहीं बढ़कर।

डटकर खड़ा हूँ ख़ौफ़ से ख़ाली जहान में ;
तसकीने[1]-दिल भरी है मेरे दिल में, जान में।
सूँघें ज़माँ[2] मकाँ[3] हैं मेरे पैर मिस्ले-सग[4] ;
मैं कैसे आ सकूँ हूँ क़ैदे-बयान[5] में।

हबशी ग़ुलामों को स्वतन्त्रता देने के लिये अमेरिका के गृह-युद्ध के दिनों यह ह्विटमैन प्रत्येक युद्ध में सबसे आगे मौजूद था। दोनों ओर के ज़ख़्मियों की मरहम-पट्टी करना, प्यासों को पानी पिलाना, सिसकती जानों की जान में अपनी मुस्कानों से

---

१ शांति। २ काल। ३ देश। ४ कुत्ते के समान। ५ वर्णन के बन्धन में।

जान डालना और इसी समय की अपनी नवीन काव्य-कृति को रात-दिन गाते फिरना उसका मनोरंजन का काम था। इस रोने-धोने की भीड़ में अर्थात् घोर रणभूमि व भीषण संग्राम में यह ह्विटमैन ऐसा प्रसन्न-चित्त और सन्तुष्ट फिरता था, जैसे शिवशंकर भूत-प्रेत के घमसान में, या जैसे कृष्ण भगवान् कुरु-क्षेत्र के मैदान में। धन्य थे, इन निरन्तर युद्धों के अधमुए, जो ऐसे अवतारी पुरुष के दर्शन करते मृत्यु को प्राप्त हुए।

शब हो, हवा हो, धूप हो, तूफाँ हो, छेड़-छाड़ ;
जंगल के पेड़ कब इन्हें लाते हैं ध्यान में।
गर्दिश से रोज़गार की हिल जाय जिसका दिल ;
इन्सान होके कम है दरख्तों से शान में।

अर्थात् चाहे रात हो, चाहे हवा हो, चाहे धूप हो, चाहे आँधी और उसके झोंके, जंगल के वृक्ष इनकी कुछ परवाह नहीं करते। और समय के हेर-फेर से जिसका चित्त अस्थिर हो जाय, वह चाहे मनुष्य ही हो, परन्तु वृक्षों की अपेक्षा तुच्छ है।

इस प्रकार का ब्रह्मनिष्ठ अमेरिका में हेनरी थोरो (Henry Thoreau) भी हुआ है, जो सच्चे ब्रह्मचारी या संन्यासी का जीवन एकान्त जंगलों में व्यतीत करता था। अलबत्ता आलस्य-सेवी साधु न था। अमेरिका का सबसे बड़ा लेखक एमर्सन (Emerson) इस थोरो के सम्बन्ध में लिखता है कि शहद की भिड़े उसकी चारपाई पर उसके साथ सोती हैं, किन्तु उस निडर प्रेम के पुतले को नहीं डसतीं। जंगल के साँप उसके हाथों और टाँगों को चिमट जाते हैं, किन्तु वह कंकण और पाज़ेब समझता हुआ उनकी परवाह नहीं करता। कैसा व्यालभूषण है!

मार्ग पर चलते-चलते एमर्सन ने पूछा—"यहाँ के पुराने निवासियों के तीर कहाँ मिलते हैं ?" तो अपने स्वभाव के

अनुसार झट जवाब दे दिया—"जहाँ चाहो" और इतने में झुककर उसी स्थान से इच्छित तीर उठाकर दे दिया। दृष्टि-सृष्टिवाद का कैसा प्रत्यक्ष अभ्यास है!

स्वयं एमर्सन, जिसकी लेखनी ने अर्वाचीन जगत् में नवीन चेतना फूँक दी, भगवद्गीता और उपनिषदों का न केवल ज्ञाता बल्कि उनका बहुत बड़ा अभ्यासी था। उसने अपने लेखों में उपनिषद् और गीता के प्रमाण कई एक स्थानों पर दिये हैं, और उसके निज के मित्रों की ज़बानी मालूम हुआ कि उसके विचारों पर विशेषतः गीता और उपनिषदों का प्रभाव था। महात्मा थोरो अपनी 'वाल्डन' (Waldan)-नामक पुस्तक में लिखता है—"प्रातःकाल मैं अपने हृदय और मस्तिष्क को भगवद्गीता के पवित्र गंगा-जल में स्नान कराता हूँ। यह वह सर्वश्रेष्ठ और सर्वव्यापी तत्त्वज्ञान है कि इसको लिखे हुए देवताओं के वर्षों पर वर्ष बीत गये, किन्तु इसके बराबर की पुस्तक नहीं निकली। इसके समक्ष हमारा अर्वाचीन जगत् अपनी विद्याओं और कला-कौशल व सभ्यता के साथ तुच्छ और क्षुद्र मालूम देता है। इसकी महत्ता हमारे विचार और कल्पना से इतनी ऊँची है कि मुझे कई बार ख़्याल आता है कि शायद यह शास्त्र किसी और ही युग में लिखा गया होगा।" एक और प्रसंग पर 'मिस्र' के भव्य मीनारों का वर्णन करते हुए थोरो लिखता है कि प्राचीन जगत् के समस्त स्मारकों में भगवद्गीता से श्रेष्ठतर कोई संस्मरण नहीं है। यही भगवद्गीता और उपनिषदों की शिक्षा आचरण में आई हुई व्यावहारिक वेदान्त या नक़द धर्म हो जाती है। इसी को रगों-पट्ठों में लाकर वे लोग उन्नति को प्राप्त हो रहे हैं। आपके यहाँ यह क़ीमती नोट (हुंडी) मौजूद है। परन्तु काग़ज़ के नोट से, चाहे वह

कितना ही क़ीमती हो, भूख नहीं जाती, प्यास नहीं बुझती, शरीर की ठंढक नहीं दूर होती। इस हुंडी को भुनाकर 'नक़द धर्म' में बदलना पड़ेगा। आज वे लोग इस नोट की क़ीमत दे सकेंगे। आज वहाँ पर यह हुंडी खरी हो सकती है। करो खरी।

जब सीताजी अयोध्या से वनवास को सिधारीं, तो उनके पीछे शोभा दूर हो गई। शोक-विलाप फैल गया, प्रजा व्याकुल हो गई। राजा का शरीर छूट गया। रानियों को रोना-पीटना पड़ गया, राजसिंहासन चौदह वर्ष तक मानो ख़ाली रहा। परन्तु जब सीताजी को समुद्र-पार से लाने के लिये राम खड़ा हो गया, तो पक्षी (गरुड़ और जटायु) भी सहायता करने को तैयार हो गये, जंगल के पशु (बन्दर, रीछ इत्यादि) लड़ने-मरने के लिये सेवा में उपस्थित हो गये। कहते हैं कि अपनी छोटी-सी शक्ति के अनुसार गिलहरियाँ भी मुँह में रेत के दाने भर-भरकर पुल बाँधने के लिये समुद्र में डालने लगीं। वायु और जल भी अनुकूल बन गये। पत्थर भी जब समुद्र में डाले गये, तो सीता के लिये वे अपने स्वभाव को भूल गये और डूबने के स्थान पर तैरने लगे।

कुनम सद सर फ़िदाए पाये-सीता ;
चि यकता सर चि दह ता सर चि सी ता।

अर्थात् मैं सीता के चरणों में सौ सर न्यौछावर कर दूँगा, एक सर, दो सर और तीस सर क्या चीज़ है।

सीता से अभिप्राय अध्यात्म रामायण में है ब्रह्मविद्या। हम कहेंगे—अमली ब्रह्मविद्या। अमली ब्रह्मविद्या (व्यावहारिक वेदांत या नक़द धर्म) को तिलाञ्जलि देने से भारतवर्ष में सर्व प्रकार की आपत्ति आई। क्या-क्या विपत्ति नहीं आई? किस-

किस दुःख और रोग ने हमें नहीं सताया ? हाय ! यह सीता समुद्र-पार चली गई। व्यावहारिक ब्रह्मविद्या को समुद्र-पार से लाने के लिये आज खड़े तो हो जाओ, और देखो, समस्त संसार की शक्तियाँ आपस में शर्तें बाँधकर तुम्हारी सेवा व सहायता करने के लिये हाथ जोड़े खड़ी हैं, सब-के-सब देवता और फ़रिश्ते सर झुकाये हाज़िर खड़े हैं। प्रकृति के नियम शपथ खा-खाकर तुम्हारी सहायता को कटिबद्ध होकर खड़े हैं। अपने ईश्वरत्व में जागो तो सही, और फिर देखो कि होता है या नहीं।

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ;
हम बुलबुलें हैं उसकी, वह बोस्ताँ हमारा।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

अकबर-दिली अर्थात् आत्म-महत्ता

मस्त हाफ़िज़ का वचन है—

कुलाहे-ताजे-सुलतानी कि बीमे-जाँ दरो दर्जस्त ;

कुलाहे-दिलकशस्त अम्मा, बदर्दे-सर न मी अर्ज़द ।

अर्थात् बादशाह का ताज, जिसमें हमेशा जान का भय है, दिल को लुभनेवाला तो होता है, मगर सर के दर्द के बराबर भी उसकी क़ीमत नहीं की जाती ।

ख़्वाजा हाफ़िज़ ने हमारे शाहंशाह अकबर को नहीं देखा था, नहीं तो इस तरह का इशारा कभी न करते, जो अँगरेज़ कवि शेक्सपियर ने भी किया है—

"Heavy lies the head that wears a crown."

भारी वह ग़म से सर है कि जिस सर पै ताज है ।

क्या दोस्त, क्या दुश्मन, क्या आईने-अकबरी के शेख़ साहब (अबुल फ़ज़ल), क्या ख़ुफ़ियानवीस हज़रत मुल्ला (बदावनी), क्या पुर्तगाल के पादरी, क्या सिंध-गुजरात के जैनी, क्या अमीर, क्या ग़रीब, क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या विद्वान्, क्या मूर्ख, क्या दुराचारी, क्या जितेन्द्रिय, सबके दिलों में जिसकी हुकूमत थी, जहाँ चाहे और जिस गोद को चाहे सरहाना बनाकर बेखटके नींद में पैर पसार सकता था, ऐसा कौन था ?—हिन्दुस्तान का शाहंशाह अकबर ।

फ़्रांस की राज्य-क्रान्ति के समय के बादशाह के विषय में टॉमस पेन ने यह करुण वचन कहा है—"हाय ! यह उसका

दुर्भाग्य था कि बादशाह हुआ।" बेशक जिस राजा का राज्य प्रजा की भूमि और शरीरों तक ही परिमित हो, उससे बढ़कर ग़रीब और दया का पात्र कौन हो सकता है ?

क्या अकबर के दुश्मन न थे ?—थे क्यों नहीं। लेकिन महाराणा प्रताप-जैसे महा साहसी, वीर, सच्चे धर्मात्मा क्षत्रिय का दुश्मन होना भी अकबर के गौरव को दूना करता है। ख़ैर, हमें तो इस समय अकबर के शासन के एक दूसरे ही पहलू से प्रयोजन है।

ईश्वर-स्मरण

क्रामवेल, बाबर, महमूद, रणजीतसिंह एवं और भी हज़ारों बादशाहों और वीरों का नियम था कि जो युद्ध शुरू करते, सच्चे दिल से, ईश्वर के दरबार में अपना सर्वस्व अर्पण करके, ईश्वर के नाम पर शुरू करते थे और उनकी विजय भी उनकी सचाई और ईश्वर-स्मरण के अनुसार थी। बहुत ख़ूब ! लेकिन काम के आरंभ में बिनती करना और सहायता माँगना तो कौन-सी बड़ी बात है। हम सच्चा वीर उसी को मानते हैं, जिसकी हार्दिक निष्ठा और त्याग विजय के बाद जोश मारे।

जिसे ऐश[1] में यादे-ख़ुदा ही रही, जिसे तैश[2] में ख़ौफ़े-ख़ुदा न गया।

सामवेद के केनोपनिषद् में एक कथा आई है कि इन्द्रियों के देवता एक बार बड़े मार्के की लड़ाई जीत चुके और, जैसा कि अभी तक नियम चला आ रहा है, भोग-विलास और अमोद-प्रमोद के साथ विजय का उत्सव मनाने लगे। उपनिषदों में बड़ी ही उत्तमता के साथ दिखाया गया है कि किस प्रकार इन

---

१ आराम। २ क्रोध।

देवताओं को शिक्षा मिली। ऐसी शिक्षा को याद रखनेवाला भारतवर्ष का एक सम्राट् अकबर हुआ है। जब विजय पर विजय पाता गया और एक के बाद दूसरा सूबा उसके हाथ आता गया, यहाँ तक कि लगभग संपूर्ण भारतीय साम्राज्य उसके शासनाधीन हो गया, जब वह राज्य की सीमा और आबादी की दृष्टि से चीन-सम्राट् को छोड़ जगत् में सबसे बड़ा सम्राट् हो गया, जब उसके सौभाग्य का नक्षत्र ठीक चरम उच्चता पर पहुँचा, जब वह चढ़ते-चढ़ते उस फिसलनी घाटी तक उदय पा चुका, जहाँ इधर तो नीचे अड़े हुए लोग मुँह तकते हैरान खड़े हुए कहते हैं—

यह जायगा बढ़कर कहाँ रफ़्ता-रफ़्ता।

और उधर नेपोलियन-जैसा वीर पैर फिसलते ही धम से पाताल में गिरा, और गिरते ही चकनाचूर! ऐसी दशा में उस भूल जानेवाली घड़ी में देखिए—

सबको जब भूल गए, उनको ख़ुदा याद आया।

सोचने लगा कि यह हाड़ और चाम का ज़रा-सा शरीर, इसमें यह शक्ति कहाँ से आई? किसके प्रसाद से

दौलत ग़ुलामे-मन शुदो इक़्बाल चाकरम।

अर्थात् धन मेरा सेवक और वैभव मेरा अनुचर होता जा रहा है? इस दिमाग़ और दिल में तेज कहाँ से आता है?

कौन है, मन को चलाता कौन है!
इन 'परानों' को हिलाता कौन है!

क्या भेद है? क्या आश्चर्य है?

प्रतिदिन इस प्रकार की विचार-धारा से उस प्रकाश-स्वरूप, चिदानंदघन परमात्मा के धन्यवाद में बादशाह सलामत का यह हाल हो गया कि

दिल तेरा, जान तेरी, आशिक़े शैदा तेरा।

दिन-रात का धंधा हो गया—

नमाज़ो-रोज़ा-ओ-तसबीहो-तोबा इस्तग़फ़ार ।

अर्थात् नमाज़, रोज़ा, तसबीह (माला), तोबा (पश्चात्ताप) और इस्तग़फ़ार (क्षमा-प्रार्थना)।

धार्मिक छानबीन

अकबर के समकालीनों में इँगलैंड के राजसिंहासन पर महारानी एलिज़बेथ विराजमान थीं। यह महारानी इँगलैंड के अन्य शासकों में वैसी ही यशस्विनी है जैसे हिन्दुस्तान के अन्य बादशाहों में अकबर। इँगलैंड में एलिज़बेथ के राज्य-काल या प्रूशिया-जर्मनी में .फ्रेडरिक महान् के राज्य-काल को विद्या और कला की उन्नति तथा देश-प्रबन्ध की उत्तमता की दृष्टि से तो हिन्दुस्तान में अकबर के राज्य-काल से तुलना कर सकते हैं, वे दोनो छत्रधारी अपने-अपने देश में सर्वप्रियता की दृष्टि से अकबर की बराबरी कर सकते हैं, लेकिन धार्मिक छानबीन, ईश्वरोपासना और सब संप्रदायों के लिये एकसमान रिआयत (पक्षपात-रहित बर्ताव) के कारण अकबर की कीर्ति अनुपम है। *

* भारतवर्ष के कई एक आधुनिक उपन्यासकारों ने अपने कथानकों को चटकीले-भड़कीले बनाने के लिये भोग-विलास (इन्द्रिय-सुख की लोलुपता) आदि बहुत-से काले रंगों में अकबर की हँसी उड़ाई है और बहुत-से ऐसे लोग मौजूद हैं, जिनके सादे दिलों पर यह कथानकों की गप इतिहास का सम्मान पा चुकी है। लेकिन कथानक तो क्या, सारे संसार के ऐतिहासिकों को चैलेंज (Challenge) देकर राम पूछता है कि भला इंद्रिय-विलास और अभ्युदय (उन्नति) भी कभी एकसाथ चल सकते हैं ? चमगादड़ तो शायद दोपहर के समय शिकार करने आ भी निकले, लेकिन सियाह-दिली (हृदय

महाराजा विक्रम और भोज के समय में भी इसी कोटि का सुख-सौभाग्य प्रजा को प्राप्त था, किन्तु वे दूर-दूर की बातें हैं और विना जाँच-पड़ताल की हुई। महाराजा अशोक के समय में प्रजा को हर प्रकार का सुख प्राप्त था, विचार और धर्म की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी, चीन आदि अन्य देशों के लोग भी हिन्दुस्तान में आते और लाभ उठाकर जाते थे। जिस प्रकार शिकागो (अमेरिका) में, १८९३ ई० में, सर्व-धर्म-सम्मेलन हुआ था, उसी तरह हिन्दुस्तान में सारे संसार के धर्मों का उत्सव भी धूमधाम से हुआ था। किन्तु अकबर का तो न केवल दरबार बरन् हृदय भी लगातार संसार भर के धर्मों का उत्सव-स्थान बन रहा था। किसी धर्म और संप्रदाय के लिये दरवाज़ा बन्द न था। विद्या, ज्ञान और सत्यता के उपासक चाहे किसी ओर से आवें, सदैव स्वागत करता था। इस वीर पुरुष का हृदय पूर्ण शांति का घर था और मत्थे पर किसी विरोधी मत या सम्मति के लिये ताला नहीं लगा था। उल्मा, मुल्ला, शेख़, क़ाज़ी, विद्वान्, पंडित, शाक्त, वैष्णव, जैनी, पार्सी, ईसाई, पादरी तथा कश्मीर, दक्खिन, पूरब, सिंध, गुजरात, फ़ारस, अरब, पुर्तगाल और फ़्रांस तक के लोग अपने-अपने सिद्धांत और विचार जी खोलकर बादशाह को सुनाते हैं, क्योंकि बादशाह सलामत अत्यन्त उत्साह से सुनते हैं और हृदय से सराहना करते हैं। दिन को ही नहीं, रात को भी, जब लोगों के आराम का समय है, महलसरा के चबूतरे पर

की मलिनता) सफलता के तेज को सह नहीं सकती। अगर मन में यह विचार कहीं से जमा बैठे हो कि विश्वासघात और पाप के साथ सुख-सौभाग्य का उदय हो सकता है, तो झटपट निकाल दो इस नीच विचार को, उड़ा दो इस झूठे भ्रम को। यह प्रकृति के आध्यात्मिक नियम के विरुद्ध है, तुम्हें यह बढ़ने न देगा।

शाहंशाह अकबर इस पद्य के जीवित उदाहरण बने हुए मानव-प्रेम का प्रदीप प्रकाशित कर रहे हैं—

पए इल्म चूँ शमअ बायद गुदाख़्त।

अर्थात् विद्या के लिये मोमबत्ती के समान पिघलते रहना चाहिए।

कुछ पाठकों को यह बात दिल्लगी-सी मालूम होगी कि शाही चबूतरे से रस्से लटकाए जाते हैं और महलों की दीवार के साथ एक पलँग खिंचा हुआ ऊपर चढ़ता आता है, यहाँ तक कि चबूतरे के पास आ पहुँचा। रात के समय लकटे हुए पलँग पर विराजमान पंडितजी महाराज, या हज़रत सूफ़िया कराम, या कोई और महाशय अपने व्याख्यान आरम्भ करते हैं और तीक्ष्ण-बुद्धि-संपन्न शाहंशाह ध्यानपूर्वक सुनते और प्रश्न करते हैं। कई बार रात-की-रात तर्क-वितर्क में ही बीत जाती है। वाह री ज्ञान-प्राप्ति की जिज्ञासा!

बादशाह की आज्ञा से सब धर्मों की पुस्तकों के फ़ारसी में अनुवाद होने शुरू हो गए। इंजील के अनुवाद के शुरू का मिसरा है—

ऐ नामे-तो जीज़ज़ो क्रूष्टो।

भागवत, महाभारत, विशेषतः भगवद्गीता, विष्णुपुराण और कई उपनिषदें फ़ारसी गद्य और पद्य में पिरोई गईं। इन अनुवादों को सुनते रहना और स्वयं अपने आचरण से उन्हें सुनाते रहना अकबर का सबसे बड़ा काम था।

गीता, विष्णुपुराण और उपनिषदों के ये अनुवाद अद्वैत वेदान्त के पक्ष में हैं। इन्हीं पुस्तकों के फ़ारसी-अनुवाद बाद में भी हुए, किन्तु साधारणतः ये अकबरवाले अनुवाद थे, जिनको फ़्रांस के लोग लैटिन भाषा में, जो उन दिनों समस्त योरप के विद्वत्समाज की भाषा थी, अनुवाद करके फ़्रांस को ले गये।

इस प्रकार ये पुस्तकें पहले फ्रांस में और वहाँ से जर्मनी में पहुँचीं। वहाँ उनका अत्यन्त सम्मान हुआ। योरप के दार्शनिक श्लेगल, विक्टर कज़न, शोपेनहार आदि के ग्रंथ हिंदू-दर्शनों और उनके इन अनुवादों की महिमा का जोश के साथ गुण-गान करते हैं। बाद में फ्रांस से हैनरी थोरो के द्वारा इन हिन्दू-पुस्तकों के लैटिन-अनुवाद अमेरिका में पहुँचे और थोरो के मित्र एमर्सन के हाथ पड़े। एमर्सन और थोरो के लेख पर वेदान्त का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है और अधिकतर एमर्सन की रचनाओं के कारण अमेरिका में वेदान्त की तरह का एक नया धर्म चल निकला, जो बहुत शीघ्र विश्वव्यापी होने की आशा रखता है। संसार के लगभग सबसे बड़े विद्या-केन्द्र हार्वर्ड युनिवर्सिटी का तत्त्ववेत्ता प्रोफ़ेसर जेम्स लिखता है कि सूफ़ी-मज़हब मुसलमानी धर्म पर वेदान्त के प्रभाव का परिणाम है। लेखक इस मत से सहमत नहीं है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि सूफ़ी-मत के फैलने में प्रायः वेदान्त से बहुत सहायता मिली है और हमें इस बात के मानने में भी संकोच नहीं कि संस्कृत-पुस्तकों के अकबरी-अनुवाद हिन्दुस्तान और फ़ारस आदि में सूफ़ी-मत के बढ़ाने व फैलाने में मुख्य कारण हुए हैं।

विश्व-प्रेम

बादशाह अकबर का मुख-मण्डल नवविकसित सुमन की भाँति प्रफुल्ल रहता था। सुशीलता के लिये हँसी मानो ओठों से पिरोई थी। यह प्रसन्नता क्यों न होती? जहाँ विश्व-प्रेम वा ईश्वर-भक्ति है, शोक और क्रोध की क्या शक्ति कि पास फटक सकें?

हर जा कि सुल्ताँ ख़ेमा ज़द ग़ौग़ा न मानद आम रा।

अर्थात् जिस स्थान पर राजाधिराज ने डेरा लगाया, वहाँ साधारण लोगों का शोर न रहा।

यादे-अल्ताफ़े-ख़ुदा दर दिल निहाँ दारेम मा ;
दर दिले-दोज़ख़ बहिश्ते-जाविदाँ दारेम मा।

अर्थात् परमात्मा की कृपा का निरन्तर हम हृदय में स्मरण रखते हैं, और इस प्रकार नरक-लोक में भी हम नित्य स्वर्ग का अनुभव करते हैं।

जिन लोगों के हृदय ऐसे उदार और जिनके भीतर की प्रीति ऐसी विश्वव्यापिनी न थी, उनमें से एक मुल्ला साहब बादशाह को परदे के भीतर से यों ताना देते हैं—

ख़ंदा कर्दन रख़ना दर क़सरे-हयात अफ़गंदन अस्त ;
मेशवी अज़ हर नसीमे हम चूँ गुल ख़ंदाँ चरा।

अर्थात् हँसना मानो जीवन-गृह में छिद्र बनाना है, जैसे प्रातः काल की वायु के झकोरे से खिले हुए फूल की दशा होती है।

उपदेशक महोदय! आप तो बादशाह की सर्वप्रियता और प्रसन्न-मुखता को मृत्यु के अंचल की छाया के नीचे छिपाया चाहते हैं। मौत की गिदड़भबकियाँ उनको देते फिरो, जो विश्व-प्रेम से शून्य-हृदय हैं। हमारे बादशाह की तो जिह्वा यों पुकार रही है—"प्रसन्न-मुख होकर मरना अच्छा, और शोक-संतप्त रहकर जीना बुरा।"

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये ;
जीता है वह, जो मर चुका इंसान के लिये।

तंगदिली (हृदय की संकुचित अवस्था) का उपदेश तो इस दरबार में प्रलाप-मात्र है—

रूए के ज़ूदे न कुशायद न दीदनी स्त ;
हरफ़े कि नेस्त मग़ज़ दरो ना शुनीदनी स्त।
ख़ंदारू बूदन ब अज़ गंजे-गुहर बख़्शीदन अस्त ;
ता तवानी बर्क़ बूदन अब्रे नेसानी मबाश।

अर्थात् वह मुख जो शीघ्र न खिले, देखने-योग्य ही नहीं है। वह अक्षर जिसमें कोई तात्पर्य नहीं, न सुनने ही योग्य है। प्रसन्न-मुख होना मोतियों के ख़ज़ाने के दाने से भी अच्छा है। जब तक बिजली बन सकता है, तब तक वर्षा मत बन।

भिन्न धर्मावलंबियों से भी सद्व्यवहार करो, विरोधियों से भी प्रीति करो, व्यक्तिगत शत्रुता को जड़ से उखाड़ डालो, सब से प्रीति कर लो, आदि कहना सहज है, किन्तु करना बहुत कठिन। पर हाँ, कठिन हो चाहे कठिनतर, सामान्यतः सदैव और विशेषतः आजकल हिन्दुस्तान में इस सिद्धान्त को आचरण में लाये बिना जातीय एकता और परस्पर मित्रता कदापि उत्पन्न नहीं हो सकती। हम यह नहीं कहते कि जिस धर्म में उत्पन्न हुए, उसे छोड़ो, और ढुलमुल-यक़ीन या रकाबी-मज़हब (सबके साथ बैठकर खानेवाले) बन जाओ ; अलबत्ता हम यह अवश्य कहते हैं कि जिस धर्म की चारदीवारी में पैदा हुए, उस चारदीवारी से बाहर पैर निकालने को पातक समझना अपने आप आत्म-हनन करने का पातक है। जहाँ पैर टिकाओ, अटल जमाओ, फिसल न जाओ, पर ईश्वर के लिये पैर आगे ही बढ़ाओ। किसी-न-किसी चारदीवारी में पैदा होना और परिपालित होना तो एक आवश्यक बात है, अलबत्ता उसी चारदीवारी में बन्द रहकर उसी में मरना पाप है—कुएँ का मेंढक बने रहना पातक है। लेकिन कोई कुछ ही पड़ा कहे, औरों के धार्मिक निश्चयों का वही सम्मान और मूल्य करना चाहिए, जो अपनी चारदीवारी के सिद्धान्तों का करते हैं। दूसरों के नाशवान् सांसारिक कोष तो लूटकर ले लेने को लोग ख़ुशी से तैयार रहते हैं, लेकिन कैसे आश्चर्य की बात है कि दूसरे लोग जब अपने आध्यात्मिक

कोष (धार्मिक निश्चय वा सिद्धान्त) को विनय से भी उपस्थित करते हैं, तो भी घृणा ही रहती है। इस घृणा का असली कारण क्या है? न्यूनता अर्थात् जिस धर्म में उत्पन्न हुए, उसमें पूर्ण प्रवेश और यथेष्ट अनुभव न होना।

आज़ादी-ए-मा दर गिरौ पुख़्तगीए मास्त ;
आवेख़्ता अस्त अज़ रगे-ख़ामी समरे-मा।

अर्थात् हमारी स्वतन्त्रता हमारी परिपक्वता के आश्रित है, क्योंकि हमारा फल कच्ची शाखा से लटका हुआ है।

लेकिन कोई कुछ ही कहे, दूसरों के धार्मिक सिद्धांतों का वही सम्मान करना अत्यंत कठिन है, जैसा कि मनुष्य अपने जन्मजात धर्म के सिद्धान्तों का करता है।

प्यारे पाठको! ज़रा विचार तो करो, जिस धर्म में आप पले-पोसे, उसके विरोधी लोगों के व्याख्यान व भाषण सुनने की तैयारी के लिये चित्त को कितनी कमर कसनी पड़ती है, किंतु वाहरे वीर अकबर! तेरा दिल है कि सबका हो रहा है। तू मानो प्रजा के सब घरों में पैदा हुआ था, सब धर्मों की गोदी में खेला था, सब संप्रदायों के यहाँ पला था, न केवल इसलाम धर्म ही बरन् हिन्दू-धर्म, जैन-मत, पार्सी और ईसाई-धर्म भी उसी जोश से तेरे जन्मजात धर्म हो रहे हैं। हिन्दुस्तान को 'इंतिख़ाबे जहाँ' नाम देते हैं और तू 'इंतिख़ाबे-हिन्दुस्तान' बन रहा है। मनुष्य को आलमे-सग़ीर (लघु जगत्) कहा करते हैं, किंतु तू आलमे-अकबर (महान् जगत्) बन रहा है। प्रीति का अंत क्या होता है? चित्त की एकाग्रता अर्थात् मित्र का मन हमारा मन हो जाय। और एकदिली का अंतिम छोर यह है कि मित्र के विश्वास और उसका ईश्वर हमारे विश्वास और ईश्वर हो जायँ। और पवित्रता की सीमा यह है कि एकदिली का अंतिम छोर एक

मित्र तक सीमित न रहे, बरन् सारी सृष्टि के साथ व्यवहार में आ जाय। जब हमारा चित्त सबके साथ एकचित्त हो जाय, माता जैसे अपने एक बच्चे को देखती है, उसी दृष्टि से जब हम प्रत्येक प्राणी को अपना ही देह-प्राण समझने लगें, सूर्य जैसे सब घरों का दीपक है, उसी तरह जब हमारा चित्त हमें सब हृदयों का चित्त अनुभूत होने लगे, तो पवित्र प्रेम की विभूति प्राप्त होती है। वह कौन-सी करामात है जो पवित्र विश्व-प्रेम के लिये संभव नहीं है? वह कौन-सा चमत्कार है, जो इस सच्चे प्रेमी के लिये बच्चों का खेल नहीं बन जाता? आज हम अकबर के इस पवित्र विश्वव्यापी प्रेम का नाम रखते हैं—

अकबर-दिली अर्थात् आत्म-महत्ता

इस अकबर-दिली से क्या नहीं हो सकता? आईने-अकबरी में लिखा है कि जब अकबर का आत्म-बल बहुत बढ़ गया, तो उसकी दृष्टि से रोगी चंगे हो जाने लगे। अकबर का ध्यान करने से लोगों की अभिलाषाएँ पूर्ण होने लगीं, दूर-दूर की बातें अकबर के चित्त में प्रकाशित हो जाने लगीं—

इश्क़ हो, रास्त करामात न हो, क्या माने!
हस्बे-इरशाद ही सब बात न हो, क्या माने!

अर्थात् सच्ची प्रीति होने पर चमत्कार और आज्ञानुसार सब बातें भला कैसे न हों?

यह कोई नई बात नहीं है। हज़रत मुहम्मद, ईसा, हिन्दुओं के ऋषि, मुनि, महात्मा, किन-किन के विषय में ऐसा नहीं सुना गया? अमेरिका के संयुक्त प्रदेश में आज हज़ारों बल्कि लाखों ऐसे लोग मौजूद हैं जिनके लिये रोगों की चिकित्सा सिवा

ईश्वर में अनन्य भाव के और किसी प्रकार से करना अत्यन्त कठोर शपथ और घोर नास्तिकता से भी बुरा माना जाता है।

औषध खाऊँ, न बूटी लाऊँ, ना कोई बैद बुलाऊँ ;
पूरण बैद मिले अविनाशी, वाही को नबज दिखाऊँ।

मौलाना जलाल रूमी ने भी कहा है—

शाद बाश ऐ अशअशे-सौदाय मा ;
ऐ दवाए जुमला इल्लतहाय मा।
ऐ दवाए नख़वतो नामूसे-मा ;
ऐ तू अफ़लातूनो जालीनूसे-मा।

अर्थात् ऐ मेरे पागलपन की मस्ती ! वाह-वाह। ऐ समस्त रोगों की औषध ! ऐ मेरे घमण्ड और सम्मान की दवा ! ऐ मेरे अफ़लातून ! ऐ जालीनूस ! ख़ुश रहो।

हाल में 'साइकॉलोजी ऑफ़ सजेशन' (Psychology of Suggestion) की खोज ने अमेरिका के सरकारी चिकित्सालयों में विना औषध के चिकित्सा (अध्यात्म-चिकित्सा) प्रचलित कर दी है। अकबर-दिली, इसलाम वा विश्वास यदि राई के दाने भर भी हो, तो पहाड़ों को हिला सकता है। मेरे प्यारे भारत के नवयुवको ! तुम गई-बीती अठारहवीं शताब्दी के डेविड ह्यूम आदि के भर्रे में आकर मूर्खता का नाम विद्या मत रक्खो। इसलाम और विश्वास को कम करने के बजाय अटल निश्चय और विश्व-प्रेम बढ़ाते क्यों नहीं ? यदि विद्युत् और भाप की शक्ति वर्णन से बाहर है, तो मानवी-हृदय क्या नहीं कर सकता ? प्रत्येक जाति और संप्रदाय के लिये विश्व-प्रेम बढ़ाकर तो देखो। किसी एक जाति, संप्रदाय और देश-विशेष का विचार न करके प्रत्येक प्राणी के साथ वह मानव-प्रेम, जो सच्चा मनुष्य बनाता है, इतना आवेश-पूर्ण उत्पन्न करो कि जितना परिवार के दो-एक व्यक्तियों

में ख़र्च कर रहे हो। देश की मिट्टी तक को प्यारा बनाकर देखो, यही संसार स्वर्ग को मात करता है कि नहीं। क्या तुमने मन को शत्रुता और वैर से बिलकुल पवित्र व शीशे के समान साफ़ करने का कभी अनुभव किया था?

वफ़ा कुनेमो मलामत कशेमो ख़ुश बाशेम;
कि दर तरीक़ते-मा काफ़रीस्त रंजीदन।

अर्थात् हम अपने प्रण को पालन करते हैं, डाट-फटकार सहते हैं और ख़ुश रहते हैं, क्योंकि हमारे मत में रंज करना अधर्म है।

अगर यह परीक्षा अभी तक नहीं की, तो तुम इसके फलों को रद् करने के भी अधिकारी नहीं। योगदर्शन में लिखा है—

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।"

अर्थात् जब हम में विश्व-प्रेम (अहिंसा) दृढ़-रूप से स्थिर हो जाय, तो आस-पास के जंगली हिंसक विषधर आदि जीवों में भी शत्रुता नहीं रह सकती। अगर कर्म और फल (action and re-action) कार्य-कारण की समानता का सिद्धान्त ठीक है, तो ऐसा क्यों न होगा?

अज्ञान जो ज्ञान प्रतीत होता है या वह बुद्धि जो बाहरी वस्तुओं की छान-बीन करती है, आत्मिक अजीर्णता है। इसके टिक जाने से शंका-रूपी घातक क्षय-रोग उत्पन्न हो जाता है। यही कुफ़् (अधर्म) है, जो इसलाम (श्रद्धा, विश्वास या आत्मिक जीवन) को चुपके-चुपके खा जाता है। मन में शंका रखते हो? उसकी जगह बंदूक़ की गोली क्यों नहीं मार लेते?

जिसे सर्व-साधारण करामात और चमत्कार कहते हैं, क्या इसके लिये इसलाम और अकबर-दिली की आवश्यकता है? कदापि नहीं। इसलाम और अकबर-दिली तो स्वयं आनंद हैं।

जब कभी आप अपने बड़े अफ़सर की कोठी पर हाकिम से मिलने जाते हैं, तो क्या आप हाकिम के उस कुत्ते के लिये जाते हैं जो कोठी के द्वार पर दुम हिलाता हुआ आकर आपके पैर सूँघता है ?

ख़र्क़े-आदत कै बकार आयद दिले-अफ़सुर्दा रा ;
गर रवद बर आब नतवाँ मोतक़िद शुद मुर्दा रा।

अर्थात् अगर मुर्दा पानी पर बहता है, तो उस पर कोई विश्वास नहीं करता ; इसी तरह अगर मुर्दा-दिल (मलीन-मन) कोई करामात दिखाता है, तो वह किस काम की ?

दर्बारियों के इम्तहान के लिये एक बार अकबर ने एक लकीर खींची और कहा कि इसे छोटा कर दो। कोई नीचे से, कोई ऊपर से, कोई बीच से लकीर को काटने लगा। अकबर बोला— "यों नहीं, यों नहीं, इसे बग़ैर काटे ही कम कर दो।" बीरबल ने उससे बड़ी लकीर पास में खींचकर कहा—"यह लो तुम्हारी लकीर छोटी हो गई।" वाह ! इसी तरह यदि तुम्हें किसी धर्म या संप्रदाय से ईर्ष्या है, तो उस लकीर को मिटाते या काटते मत फ़िरो। मज़हबी दंगे ठीक नहीं। यह युक्ति यथार्थ नहीं। तुम अपने हृदय को उनके हृदय से विशालतर बना दो। अपने प्रेम-भक्ति को उनके प्रेम से बढ़ा दो। अपनी मानव-प्रीति को उनकी प्रीति से विस्तीर्णतर कर दो। अपने साहस को उच्चतर कर दो। अपने विचार को विस्तृततर कर दो। सत्य (परमेश्वर) पर अपने विश्वास को बड़े-से-बड़ा अर्थात् अकबर बना दो। संसार की बाह्य झलक, नाम-रूपों की चमक-दमक, इस दृश्यमान् जगत् की विचित्रता, स्थिर रूपों का बहुरंगीपन, किसी की आँखों को भले ही अंधा कर दें, फ़िलॉसफ़र और प्रोफ़ेसर इस मृग-तृष्णा में पड़े डूबें, हाकिम और अमीर इस मकड़ी के जाल में पड़े फँसें, पंडित और विद्वान् इन लहरों

में उलझे रहें, जवान और बूढ़े इस स्वप्न में पड़े मरें, लेकिन तुम्हें उस सत्य-स्वरूप को कदापि न भूलना होगा। तुम्हें अपनी आँख सत्य-स्वरूप से न उठानी होगी। ऐ विश्वासी! ऐ तत्त्व-दर्शी! फिर देख मज़ा। किसकी डाह? और कैसे शत्रु?

क़ुमरियाँ आशिक़ हैं तेरी, सर्व[1] बंदा है तेरा;
बुलबुलें तुझ पर फ़िदा[2] हैं, गुल तेरा दीवाना है।

× × ×

क़िला दुःखों का सर किया ढाया;
राज अफ़लाक[3]-ओ-मिहर[4] पर पाया।
हस्ती-मुतलक़[5] सरूरे-मुतलक़[6] पर;
झंडा गाड़ा, फरेरा लहराया।
इस जगह ग़ैर[7] आ नहीं सकता;
याँ से कोई भी जा नहीं सकता।
कर सके कुछ न तीर की बौछार;
ख़ाली जाये बंदूक़ की भरमार।
पुर्ज़े-पुर्ज़े अलग हुए डर के;
धज्जियाँ जुह्ल[8] की उड़ीं डर से।
मुझको काटे कहाँ है वह तलवार;
दाग़ दे मुझको है कहाँ वह नार[9]?
मौत को मौत न आ जायेगी;
क़स्द[10] मेरा जो करके आयेगी।
रूए-आलम[11] पै जम गया सिक्का;
शाहे-शाहाँ हूँ शाहे शाहाँशाह।

---

१ वृक्ष विशेष। २ बलिहारी। ३ आकाश। ४ सूर्य। ५ सत्य-स्वरूप। ६ आनन्द-स्वरूप। ७ अन्य। ८ अज्ञान। ९ अग्नि। १० इरादा-संकल्प। ११ संसार।

यह दिखावे का हिन्दूपन, मुसलमानपन, ईसाईपन आदि विविध प्यालों की तरह हैं, जिनमें पवित्र विश्व-प्रेम का दूध पिलाने का प्रयत्न समय-समय पर होता रहा है। किन्तु इन सब प्यालों का दूध, इन सब मतों की जान, अहं-भाव का नाश या सच्चा प्रेम है।

मज़हबे-इश्क़ अज़ हमा मिल्लत जुदास्त ;
आशिक़ाँ रा मज़हब-ओ-मिल्लत ख़ुदास्त।

अर्थात् प्रेम का धर्म सब मत-मतांतरों से भिन्न है, क्योंकि प्रेमियों का धर्म और मत परमात्मा है।

इन पुराने प्यालों की तरह हज़रत अकबर ने भी एक नया प्याला गढ़ा था, अर्थात् नई रस्मों और नियमों में वही पुराना अमृत डाला था। इस नये प्याले का नाम रक्खा गया—

दीने-इलाही

जो आज़ादी का मत था। हिन्दू-मुसलमानों को दूध-शकर की तरह एक कर देना इसका अभिप्राय था। प्याला ख़ूब स्वच्छ था, मगर प्यालों से हमारी भूख या प्यास नहीं बुझ सकती। प्याले तो आगे भी बहुत धरे हैं ; हमको तो दूध चाहिए, या शराब सही।

जिगर की आग बुझे जिससे जल्द वह शै ला।

जिगर की आग तो अद्वैत के अमृत से बुझती है। अकबर-दिली दरकार है, चाहे किसी प्याले में दे दो, पुराना हो कि नया, सोने का हो या मिट्टी का।

मुफ़लिस हूँ तो कुछ डर नहीं, हूँ मय से न ख़ाली ;
बिल्लौर से बेहतर ये मेरा जामे-सिफ़ाली।

मा ज़े क़ुरआँ मग़ज़ रा बरदाश्तेम ;
उस्तख़्वाँ पेशे-सगाँ अंदाख़्तेम।

अर्थात् हम क़ुरान (धर्म-पुस्तक) से तत्त्व को ले लेते हैं और हड्डियों को कुत्तों के आगे डाल देते हैं।

मुसलमानों की मसजिदों में गुज़र हो, तो—

सिजदा-ए-मस्ताना अम बाशद नमाज़;
मुसहफ़े-रूयश बुवद ईमाने-मन।

अर्थात् मस्ती-भरा झुकना मेरी नमाज़ हो और प्यारे के मुखड़े का चूमना मेरा ईमान हो।

इस तरह का हाल होता है। बेशक "कुछ नहीं है सिवा अल्लाह के।" ईसाइयों के गिरजों में वह अहंकार व देहाध्यास का सलीब पर लटका हुआ दृश्य अपने साथ सलीब पर खींचे विना कब छोड़ता है?

न दारे आख़िरत नै दारे-दुनिया दर नज़र दारम;
ज़े इश्क़त कार चूँ मंसूर रा दारे दिगर दारम।

अर्थात् मेरी दृष्टि में न लोक दार (घर) है, न परलोक दार (घर) है; किंतु तेरे प्रेम के कारण मन्सूर के समान मेरा काम तो दूसरे ही दार (सूली) से है।

"सूली ऊपर सेज पिया की जिस पर मिलना होत।"

अकबर-दिली की आवश्यकता

क्या यह अकबर-दिली अकबर ही के लिये विशेषता रखती थी और हम-तुम से बिलकुल परे है? और क्या यह दिल की बादशाही बाहरी बादशाहत पर निर्भर है? कदापि नहीं। ईसा के साथ-साथ नौ सौ घोड़े तो नहीं चलते थे, किन्तु उसके दिल की बरकत की बदौलत लाखों नहीं करोड़ों योरप के सभ्य निवासी ग़रीब ईसा के चरण-चिह्न पर चलने में मोक्ष मानते हैं। क्या बंजर अरब और क्या अरब का एक अनपढ़ अनाथ जंगलों में रहनेवाला, जिसके हृदय में इसलाम (विश्वास) की अग्नि भड़क उठी—"ला इलाह इल्लिल्लाह" अर्थात् "नहीं है कुछ भी

सिवा अल्लाह के।" अरब के रेगिस्तान के निर्जीव रज-कणों को इस अग्नि ने बारूद के दाने बना दिये और यह रेत की बारूद आकाश तक उछलती-उछलती थोड़े ही काल में एशिया के इस सिरे से लेकर योरप और अफ़्रीक़ा के उस सिरे तक फैल गई। पूरब और पच्छिम को छेंक लिया। दिल्ली से ग्रेनाडा तक को घेर लिया। हाय ग़ज़ब! एक दिल, ग़रीब दिल, बादशाह का नहीं, विद्वान् का नहीं, एक उम्मी (अनपढ़) अनाथ का, और यह ख़ुदा-दिली। अब कौन कहेगा कि बादशाह-दिली (अकबर-दिली) के लिये बाहरी राज्य की आवश्यकता है?

बाहरी बादशाहत तो बादशाह-दिली के मार्ग में रोक और बाधा है। बुद्ध भगवान् को बादशाह-दिली के लिये बाहरी बादशाहत का त्याग करना पड़ा। ऊँट पर चढ़कर ऊँटे न लेना तो टेढ़ी खीर है। दिखावे की सामग्री और संसारी वस्तुओं के बीच में रहकर पानी में कमल की तरह निर्लेप रहने का पाठ हमें आजकल दरकार है, और यह पाठ प्राचीन काल में महाराजा जनक, अजातशत्रु, भगवान् रामचंद्र और युद्धक्षेत्र में भगवद्गीता गानेवाला दे गये थे। वही व्यावहारिक पाठ आज तीन सौ वर्ष हुए सम्राट् अकबर ने स्पष्ट-रूप से हमें फिर दिया। सामयिक कर्तव्य यही है कि चाहे किसी अवस्था में हो, अकबर-दिली प्राप्त कर लो।

प्यारे भारतवासियो! निराश मत हूजिए। ये बीज उगे बिना नहीं रह सकते। अनन्त शक्ति-रूप प्रकृति इस खेती की किसान है। विश्वास से हीन हों तुम्हारे शत्रु, निश्चय से बेनसीब हो तुम्हारी बला। मेरी जान! मिट्टी के ढेलों पर अन्न का बीज तो इस प्रकृति से उग पड़ता है, तो क्या तुम मनुष्यों

के साथ ही ईश्वर को मखौल करना था कि हृदय की भूमि में अकबर-दिली का बीज न उगेगा ?

मुल्क मार लेना तो तुम्हारे अधिकार की बात नहीं, लेकिन दिल का मारना तो तुम्हारा निज का काम है, और सच तो यों है कि जो हृदय का मालिक हो गया, वह संसार का मालिक हो गया।

मारना दिल का समझता हूँ जिहादे-अकबर[1] ;
वह ही ग़ाज़ी[2] है बड़ा जिसने यह काफ़िर मारा।

और जो यह कहा करते हैं—

दिल बदस्त आवर कि हज्जे अकबर अस्त ;
अज़ हज़ारों काबा यकदिल बेहतर अस्त।

अर्थात् मन को अपने वश में कर लेना ही महान् यात्रा है। और हज़ारों काबा की अपेक्षा एक दिल को वश में कर लेना उत्तम है।

काबा बुनगाहे-ख़लीले-आज़र अस्त ;
दिल गुज़रगाहे-जलीले-अकबर अस्त।

अर्थात् काबा ख़लीले-आज़र का (जो अग्नि-पूजक था) मकान है और दिल प्रकाश-स्वरूप परमात्मा के विचरने का स्थान है।

यहाँ, अपने ही दिल के विजय करने का अर्थ है। यदि बाह्य साम्राज्य तुम्हें प्राप्त नहीं, तो कम-से-कम एक देश में तो शासक हो सकते हो। वह कौन देश ?—हृदय का देश, अन्तःकरण का साम्राज्य।

दिल पर भी न क़ाबू हो, तो मर्दानगी क्या है !
घर में भी न हो सुलह तो फ़र्ज़ानगी क्या है !

---

१ भारी धर्म-युद्ध। २ धार्मिक योधा।

सच्चा बादशाह तो वही है, जो—

ग़मो-ग़ुस्सा-ओ-यासो-अंदोहो-हिर्मां ;
इनादो-फ़सादो अमलहाय शैताँ ।

अर्थात् शोक, क्रोध, निराशा और अशांति, दुर्भाग्य, झगड़ा, फ़साद और तमाम आसुरी वृत्तियों को अपनी विलायत में फड़कने न दे ।

अगर तन रा न बाशद दिल मुनव्वर ज़ेरे-ख़ाकश कुन ;
न बाशद दर शबस्ताँ इज़्ज़ते-फ़ानूस ख़ाली रा ।

अर्थात् यदि तन में मन प्रकाशमान (प्रसन्न) नहीं है, तो उसे मिट्टी के तले दबा दे, क्योंकि रात के समय ख़ाली फ़ानूस का मान नहीं होता ।

शक्ति का स्रोत

सफलता-दायक मेल केवल भलाई में हो सकता है । जो लोग इन्द्रियों के दास रहकर उन्नति की आशा करते हैं, जो लोग बुराई की भावना से मिलते हैं, जो अविद्या के स्थिर रखने को मेल करते हैं, वे रेत के रस्से बटते हैं । उन्हें विकास-क्रम (evolution) का भाव, ईश्वरेच्छा का दबाव, पतन की नदी में जा डुबोता है । बल केवल पवित्रता में है । यह वह ईश्वरीय नियम है कि जिसकी आँखों में कोई नोन नहीं डाल सकता । लॉर्ड टेनिसन की रचनाओं में सर गेलाहेड कहता है—

My strength is the strength of ten
Because my heart is pure.

दस जवानों की मुझमें है ताक़त ;
क्योंकि दिल में है इफ़्फ़तो-असमत ।

यदि थोड़ा बहुत अनुभव प्राप्त कर चुके हो, तो अपने ही दिल से पूछो—ऐसा है कि नहीं ? शुद्धि और सचाई, विश्वास

और भलाई, इसलाम और अकबर-दिली से भरा हुआ मनुष्य उन्नति का झंडा हाथ में लिए जब क़दम बढ़ाता है, तो किसकी मजाल है कि आगे से हिल न जाय? अगर तुम्हारे दिल में विश्वास और सचाई भरी है, तो तुम्हारी दृष्टि लोहे के सितून चीर सकती है, तुम्हारे ख़्याल की ठोकर से पहाड़ों के पहाड़ चकनाचूर हो सकते हैं। आगे से हट जाओ, दुनिया के बादशाहो! यह शाहे-दिल तशरीफ़ ला रहा है, सख़्त पत्थर की तरह देश में शताब्दियों के जमे हुए पक्षपात उसके पैरों की आहट पाकर उड़ जायँगे, अहल्या की शिला इस राम के चरण छूते ही देवी होकर आकाश को सिधारेगी। अकबर-दिली के डंडे से समुद्र को मारो और वह रास्ता दे देगा। सब से पहले मुसलमान (मोहम्मद) का वचन है—"अगर मेरी दाहिनी ओर सूर्य खड़ा हो जाय और बाईं ओर चन्द्रमा, और दोनो मुझे धमकाकर कहें कि चल हट पीछे, तो भी मैं कभी नहीं हट सकता।"

अगर्चे क़ुत्ब[1] जगह से टले तो टल जाये;
और आफ़ताब भी क़ब्ले-उरूज[2] ढल जाये।
कभी न साहबे-हिम्मत का हौसला टूटे;
कभी न भूले से अपनी जबीं[3] पै बल आये।

अर्थात् चाहे ध्रुव अपने स्थान से टले तो टल जाय, और सूर्य उदय होने से प्रथम ही अस्त हो जाय, किन्तु साहसी पुरुष का साहस कभी नहीं टूटता, कभी भूल से भी उसके माथे पर बल नहीं आता।

अंतःकरण की शुद्धि, भीतरी सचाई और अकबर-दिली में यह शक्ति है। हृदय का भय इसके विना दूर नहीं होता। भय और भरोसा इसके विना प्राण खा जाते हैं और

---

१ ध्रुव। २ उन्नति। ३ माथा।

भीति वह व्याधि है कि पुरुष को कापुरुष बना देती है, सारी शक्ति के होते हुए भी कुछ होने नहीं देती। जैसे अँधेरे में प्रायः पाप-कर्म के सिवा और कोई कर्म नहीं बन पड़ता (The deeds of darkness are committed in the dark), इसी तरह जब भीतर विश्वास और अकबर-दिली का प्रकाश न हो, तो मनुष्य से कोई भारी काम प्रकट में बन नहीं पड़ता। जितना पवित्रता और विश्वास हृदय में अधिक गहरा होगा, उतने ही हमारे काम अधिक प्रकाश में आयेंगे।

नफ़स ब नै चो फ़रो शुद बलंद मे गर्दद।

अर्थात् श्वास जब बाँसुरी में नीचे उतरता है, तो आवाज़ ऊँची होती है।

संसार के भय और अशंका—"ग़म ओ ग़ुस्सा ओ यासो अंदोहो हिर्मां"—तब तक तुम्हें ज़रूर हिलाते रहेंगे, जब तक दुनिया के "नक़्शो निगारो रंगो बू ताज़ा-ब-ताज़ा नौ-ब-नौ" (भिन्न-भन्न नाम-रूप) तुम्हें हिला सकते हैं। और जब तुम संसार के प्रलोभनों और धमकियों से नहीं हिलते, तो तुम संसार को अवश्य हिला दोगे। इसमें जो संदेह करता है, वह काफ़िर है ?

मेल और एकता

अकबर-दिली का हिन्दी या संस्कृत-अनुवाद होगा 'महात्मा' अर्थात् 'महान्-आत्मा'। वह मनुष्य अकबर-दिल या महात्मा कदापि नहीं हो सकता, जिसका हृदय संकीर्ण अर्थात् एक छोटे-से परिमित वृत्त में बन्द है, जिसकी सहानुभूति केवल हिन्दू, मुसलमान या ईसाई नाम से संबंधित है और इससे आगे नहीं जा सकती। वह तो असग़र-दिल है, अकबर-दिल नहीं; वह लघु-आत्मा है, महात्मा नहीं। अकबर-दिली का तो हाल यह है—

हर जान मेरी जान है, हरएक दिल है दिल मेरा ;
हाँ बुलबुलो-गुल मिहरो-मह की आँख में है तिल मेरा।
हिन्दू मुसलमाँ पारसी सिख जैन ईसाई यहूद ;
सबके सीनों में धड़कता एकसाँ है दिल मेरा।

जापानी बच्चा स्कूल में जाने लगता है, तो एक-न-एक दिन नीचे-लिखा वार्तालाप गुरु-शिष्य में अवश्य छिड़ता है—

गुरु—तुम कितने बड़े हो? इसके उत्तर में बच्चा अपनी आयु बताता है, तो फिर गुरु पूछता है—तुम इतने बड़े क्योंकर हुए?

बच्चा कहता है—ख़ूराक की बदौलत।

गुरु—यह ख़ूराक कहाँ से आई?

बच्चा—हमारे देश जापान की भूमि से उत्पन्न हुई।

बेशक अगर शाक-आहार है, तो सीधे रास्ते से, और यदि मांस-आहार है, तो पशु-शरीर द्वारा देश की भूमि ही से तो आता है।

गुरु—अच्छा, तुम्हारा शरीर अन्ततः जापान की मिट्टी से फलता-फैलता है और जापान ही ने बनाया है? यदि माता-पिता से पैदा हुआ हो, तो फिर माँ-बाप की शक्ति भी तो आहार ही से आती है?

बच्चा—जी हाँ।

गुरु—तो फिर जापान को अधिकार है कि जब उचित समझे, तुम्हारा यह शरीर ले ले।

बच्चा—जी हाँ, मेरा कोई बहाना उचित न होगा।

चलो इतनी बातचीत से देश पर प्राण-समर्पण का ख़्याल छोटे बालक की प्रत्येक नस-नाड़ी में खुब गया।

प्रशंसा के पात्र हैं वे छोटे-छोटे बच्चे जिनकी समझ में यह छोटी-सी बात समा जाती है, और आचरण में आ जाती

है। हमारे देश में इधर तो विद्वान् पंडित और उधर आलिम-फ़ाज़िल मौलवी शताब्दियों में अभी व्यावहारिक-रूप से इतना न समझे कि चूँकि हम हिन्दू-मुसलमान एक ही माँ (भारत माता) से पैदा हुए हैं और उसी के दूध से पलते हैं, चूँकि हिन्दू और मुसलमान दोनो की रगों और नसों में ख़ून एक ही भूमि की वनस्पति, जल, वायु आदि से पैदा होता है, अतएव हम सगे भाई हैं? योरप के किसी देश का मनुष्य जब अमेरिका में जा बसता है, तो दो-तीन वर्ष के निवास में उसकी संपूर्ण सहानुभूति और प्रीति अमेरिका के पड़ोसियों से हो जाती है, चाहे वे उसके सहधर्मी हों या न हों। यह नहीं कि शरीर तो अमेरिका में रहे और मन उस पुराने देश में।

योरप के अधिकांश लोग ईसाई-धर्म के हैं और कितने ही उनमें ईसा के नाम पर प्राण न्योछावर कर देना परम आनन्द समझते हैं, लेकिन उनमें से कोई भी ईसा की जाति को, ईसा के देश को, अपनी जाति या देश से अधिक प्रिय नहीं रखता। राम सप्रेम कहता है—और प्रेम वह वस्तु है कि इसकी कठोरता भी सह्य होती है—प्यारे मुसलमान भाइयो! यह भेद क्यों? कवि के कथनानुसार—

"सर है कहीं, दिल कहीं, जान कहीं है!"

हिन्दुस्तान में शताब्दियों से रहते हैं, तो दिल हिन्दू लोगों से अलग क्यों रक्खे जायँ?

उधर हिन्दू-पंडितों से हमारा यह कहना है कि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् के शबरी (भीलनी) के जूठे बेर, ग़रीब मल्लाह से प्रेम, बन्दरों तक से मोहित कर देनेवाली प्रीति, शत्रु के भाई पर वह अनुकंपा, ज़रा स्मरण तो करो! और ज़रा यह भी तो स्मरण करो कि 'पंडित' शब्द की निम्न-लिखित

व्याख्या कौन कर गया है? दोनो ओर से लड़ने-मरने को सेनाएँ डट रही हैं, सारे हिन्दुस्तान के वीरों के हृदय मारे क्रोध और द्वेष के मानो आकाश तक उछल रहे हैं, इस अवसर पर रहनी और कथनी की भाषा से जगद्गुरु (अखिल जगत् का प्रकाश-दाता) कैसे स्पष्ट और सुरीले गीत में तुम्हारे लिये संदेशा (या अनुशासन) छोड़ गया है। हज़ार वर्ष हो गये, आकाश ने अपने डाकघर में इस चिट्ठी पर गर्द का नाम न पड़ने दिया। दूत पवन, उसे अपने परों से बाँधकर उत्तर, दक्खिन, पूरब, पच्छिम, पुरानी दुनिया, नई दुनिया, उत्तरी गोलार्द्ध और दक्षिणी गोलार्द्ध, जापान, योरप, अमेरिका सब कहीं पहुँचा आया। धन्य है, इस कबूतर की प्रभु-भक्ति को। अन्य देशों के लोग इस चिट्ठी पर आचरण करके दिन-दूनी, रात-चौगुनी उन्नति पा रहे हैं, पर हाय! तुमने, जिनके लिये यह श्रुति (आकाश-वाणी) पहले पहल अवतीर्ण हुई थी, उसे व्यावहारिक बर्ताव के समय बहानों में ही टाल दिया।

पंडित की व्याख्या

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ;
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः।
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ;
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः। गी० ५. १८-१९

अर्थात्—माहिरे[1] इल्मो-फ़न बिरहमन में ;
गाय में, फील[2] में कि दुशमन में।
सग[3] में, सगकुश[4] में यकनिगाही हो ;
दिल में उलफ़त[5] हो और सफ़ाई हो।

---

१ जाननेवाला। २ हाथी। ३ कुत्ता। ४ कुत्ता मारनेवाला। ५ प्रेम।

जिसमें इस एकता की रंगत है;
वही पंडित है, वह ही पंडित है।
"ढाई अक्षर 'प्रेम' के पढ़े सो पंडित होय।"

पंडित तो वह है जिसके प्रेम के चक्षु खुले हुए हैं, जो ज्ञान और प्रेम के आवेश में पशु, वनस्पति बरन् पाषाण तक में भी अपने ठाकुर भगवान् को देखता और पूजता है। वह पंडित भला कैसे कहा जा सकता है जिसको मनुष्य की छाया से घृणा हो, मुसलमान को छूना पाप जाने और व्यवहार में पत्थर (प्रतिमा) ही में भगवान् माने?

उपसंहार

अकबर के पास उसके कोके की कई बार शिकायत आई। बार-बार की बग़ावत और कई बार की साज़िश की ख़बरें अकबर ने इस कान से सुनकर उस कान से निकाल दीं। जब राज के शुभचिन्तकों ने सख़्त गिला किया कि "जहाँपनाह! इतनी नरमी और रिआयत क्यों उचित समझी जाती है?" तो उत्तर दिया—"तुम लोग नहीं समझते कि मेरे और उस कोका-भाई के बीच दूध की एक नदी बह रही है, जिसको चीरना मेरे लिये असंभव है। मैं भला क्योंकर उस पर क्रोध कर सकता हूँ?"

क्या अकबर-दिली है? धन्य है!

अकबर और उसके कोका ने एक ही राजपूत-माँ का दूध पिया था। क्या हिन्दू और मुसलमान एक ही 'भारत-माता' (हिन्दुस्तान) का दूध नहीं पी रहे? पिछली शिकायतें भूल जाओ। गिले-ग़ुस्से सब माफ़। रूठे मनाए गये!

गर ज़े दस्ते-ज़ुलफ़े-मुशकीनत ख़ताए रफ़्त-रफ़्त;
वर ज़े हिंदूए-शुमा बर मा जफ़ाए रफ़्त-रफ़्त।

गर दिले अज़ ग़मज़ए-दिलदारे-यारे बुर्द-बुर्द ;
दरमियाने जानो-जानाँ माजराए रफ़्त-रफ़्त ।

अर्थात् अगर तेरे सुगन्धित बालों के हाथ से कोई अपराध हो गया है, तो उसे हो जाने दे, और यदि तुम्हारे ग़ुलाम से हम पर कोई अत्याचार हो गया है, तो उसे भूल जाओ। अगर प्यारे के इशारे से कोई दिल छीना गया है, तो छिन जाने दो, तथा प्रीतम और प्यारे के बीच में यदि कोई झगड़ा हो गया है, तो उसे भुला दो, भुला दो।

तारे कब रोशनी से न्यारे हैं ?
तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं।

× × ×

ऐ उदू ! ऐंठ ले, बिगड़, तन ले ;
सख़्त कह दे कि सुस्त ही कह दे।
जोशे-ग़ुस्सा निकाल ले दिल से ;
ताक़ते-तैश आज़मा तू ले ।

× × ×

मुझे भी इन तेरी बातों से रोक-थाम नहीं ;
जिगर में धाम न कर लूँ तो 'राम' नाम नहीं !

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

भारत का भविष्य

(स्वर्गवासी रायबहादुर लाला बैजनाथ द्वारा लिखित "हिन्दूधर्म प्राचीन व अर्वाचीन" (Hinduism, Ancient and Modern)–नामक ग्रंथ में स्वामी राम की लिखी हुई प्रस्तावना)

राम अब भारतवर्ष के भविष्य-सम्बन्ध में, जो आशा-जनक और उज्ज्वल दिखाई देता है, कुछ शब्द कहेगा।

संसार में प्रत्येक वस्तु की गति तालबद्ध या नियमानुकूल है, और सारी सृष्टि काल-चक्र (Law of periodicity) के नियम के अधीन है। इसी नियम के अनुसार विभूति के सूर्य व नक्षत्र को भी घूमना पड़ता है। एक समय था जब कि भारतवर्ष में ज्ञान और वैभव का सूर्य मध्याकाश पर प्रकाशमान था। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय, तो आकाश-मण्डल के अन्य नक्षत्रों की तरह यह सूर्य भी धीरे-धीरे पश्चिम की ओर बढ़ता हुआ चल रहा है। पहले वह ईरान, असीरिया आदि देशों से होता हुआ पश्चिम की ओर बढ़ा। मिस्र देश को इसकी मध्याह्न-किरणें देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद यूनान की बारी आई। तत्पश्चात् रोम को इसके मध्याह्न-तेज के भोगने का आनन्द मिला। फिर इसके बाद जर्मनी, फ्रान्स और स्पेन की जागृति इसी के प्रकाश से हुई।

अन्त में इसी वैभव-सूर्य की चकाचौंध करनेवाली किरणें इँगलैंड के भाग्य में आईं। ये लो, सूर्य पश्चिम की ओर और

बढ़ा और इसी ने अमेरिका को धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया। संयुक्त-देश (अमेरिका) में भी यह अपने नियमानुसार पूर्व की ओर अर्थात् न्यूयार्क से चलकर पश्चिम की ओर बढ़ते-बढ़ते केलीफोर्निया तक पहुँचा। जब भारतवर्ष में वैभव-सूर्य का दिन था, तब अमेरिका को कोई जानता भी न था। अब जबकि अमेरिका में दिन है, तो भारतवर्ष पर दरिद्रता और पीड़ा की रात्रि छा रही है। किन्तु नहीं, विभूति का सूर्य प्रशांत-महासागर से भी गुज़रता हुआ दिखाई दे रहा है और जापान सर्वशिरोमणि राष्ट्रों की श्रेणी में आने लगा है। यदि प्राकृतिक नियम विश्वसनीय और सत्य हैं, तो ज्ञान व विभूति का सूर्य अपनी प्रदक्षिणा अवश्य पूर्ण करेगा, और भारतवर्ष पर एक बार द्विगुण कांति से दीप्तमान होगा। तथास्तु।

भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास देखने से हमें जान पड़ता है कि अन्य देशों की दशा के समान भारतवर्ष में भी रात्रि (अज्ञान व दरिद्रता-रूपी अंधकार) का भीतरी मुख्य कारण संकीर्णता (परिच्छिन्नता) के अतिरिक्त कुछ और नहीं। मस्लन् "इस कमरे में कैसा शोभायमान व सुहावना उजाला है, ओह ! यह मेरा है ! मेरा है !! केवल मैं ही इसका स्वामी बना रहूँ", ऐसा कहते हुए हमने निस्संदेह परदों को गिरा दिया और दरवाज़े तथा खिड़कियाँ बंद कर दीं ; और भारत के उजाले को केवल अपना बनाने की चेष्टा में हमने (भारत में) अंधकार उत्पन्न कर लिया। ईश्वर न किसी व्यक्ति विशेष का पक्षपाती है और न विभूति ही स्थानबद्ध है। एकता (तत्त्वमसि) के अनुभव-रूपी ईश्वरीय तत्त्व को हम अपने आचरणों में लाना छोड़ बैठे, और इस प्रकार ईश्वरीय नियम 'तत्त्वमसि',

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (सब एक हैं) को अनुभव करना और अपने आचरण में लाना हमने छोड़ दिया। नतीजा क्या हुआ? हम जाति-पाँति के भेद-भाव में फँसकर परस्पर विभक्त और दुर्बल हो गये। बड़ा भारी पाप, जो नेताओं ने किया, यह था कि अपनी सन्तान अन्त्यज जातियों के साथ बर्ताव करने में अपने स्वार्थ-त्याग रूपी कर्तव्यों की अपेक्षा अपने स्वार्थपरता रूपी अधिकारों पर ही विशेष दृष्टि रक्खी। अस्तु, जो होना था, वह हो चुका, इसी अवस्था के बदलने की आवश्यकता के कारण समय का रंग बदलता जा रहा है, और आशाजनक शकुन दिखाई दे रहे हैं। इसमें संदेह नहीं, जो खूब सोते हैं, वे खूब जागते भी हैं। भारतवर्ष बहुत काल तक सोता रहा। निस्संदेह हम यह कह सकते हैं कि अन्धविश्वास या पुराने सड़े-गले रीति-रिवाज अब धीरे-धीरे दूर हो रहे हैं और धीरे-धीरे आलस्य उड़ता जा रहा है; और पूर्ण निश्चय के साथ परिवर्तित परिस्थिति को अंगीकार करने में हम उदारता दर्शा रहे हैं।

उन्नति का नियम (Principle of progress) बाहरी क्रिया में तो विभिन्नता और भीतरी स्वरूप व भाव में पूर्ण एकता चाहता है। हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था का कारण तो राष्ट्रीय प्रगति व विकास था, जिससे कार्य और व्यवहार का संगठित विभाग और हृदय तथा भाव का पूर्ण मिलाप स्पष्ट होता था; परन्तु समय के प्रभाव से भीतरी तत्त्व (मिलाप) की अपेक्षा बाहरी बातों (विभाग) पर लोगों की दृष्टि अधिक होने लगी, जिससे स्वाभाविक क्रम बदल गया। प्रगति वा उत्क्रान्ति के स्थान पर अवगति वा अवक्रान्ति ने डेरा जमाया, और अन्त में प्रेम-तत्त्व का विभाग और व्यवहार

का मिलाप हो गया, अर्थात् एक वर्ण के लोगों ने दूसरे वर्ण के व्यवहारों (पेशों) को ग्रहण कर लिया, तिस पर प्राचीन जाति-भेद ने हृदयों को पहले से भी अधिक फाड़ डाला। देह वा चर्म-दृष्टि के अधिक बढ़ जाने से शुद्ध-स्वरूप इन क्षणभंगुर नाम-रूप उपाधियों के गढ़े में लुप्त हो गया। श्रुति (ब्रह्म-विद्या) वास्तव में निर्जीव कर दी गई, और स्मृति (प्राचीन रीति-सम्बन्धी धर्म-शास्त्र) एक अत्याचारी की संस्था बना दी गई। इस प्रकार स्मृति श्रुति के ऊपर हावी हो गई। किसी ने कहा है कि व्याकरण भाषा का श्मशान है (Grammar is the grave of language)। यह ठीक है कि ज्यों ही आप भाषा को अचल और सुरक्षित बनाने का प्रयत्न कीजिए, भाषा तत्काल निर्जीव हो जायगी। ठीक इसी प्रकार नियमों, रीतियों और कर्म-काण्ड की दृढ़ अचलता राष्ट्र का सत्त्व भक्षण कर लेती है। कुछ काल तक तो ये नियम और शासन उपयोगी होते हैं, जैसे कि बीज या दाने की रक्षा और स्थिति के लिये उसके ऊपर का छिलका उपयोगी होता है; परन्तु कुछ काल के बाद उनमें यदि परिवर्तन न हो, तो वे उन्नति के प्रतिबंधक हो जाते हैं। प्रिय देश-भाइयो! याद रखिए, ये स्मृतियाँ और शासन आपके लिये हैं, आप उनके लिये नहीं। सर्वत्र नित्य-श्रुति का प्रचार कीजिए, किन्तु स्मृति को समय की आवश्यकता के अनुसार बना लीजिए। स्मृति पर तुम्हारा पैतृक अधिकार (Heritage) हो, न कि स्मृति का तुम पर। भारतवर्ष में नदियों के मार्ग बदल गये, हिम-रेखाएँ स्थान-च्युत हो गईं, जंगलों के स्थान पर खेत बन गये, देश (भारत-भूमि) का रूप भी बदल गया, राज्य-पद्धति बदल गई, भाषा बदल गई, देश-वासियों के वर्ण बदल गये, तिस पर भी

इस क्षणभंगुर और अस्थिर जगत् में आप प्राचीन रीति-रिवाज को स्थिर करने के यत्न में लगे हुए हैं, जो आजकल वस्तुतः निस्सार है। उस प्राणी की दशा वास्तव में शोचनीय है जो आगे को चलना चाहता है परन्तु देखता निरन्तर पीछे को है। ऐसा मनुष्य पग-पग पर निस्सन्देह ठोकर खाता है।

जन्म और कर्म अर्थात् वंश-परम्परा और कालानुकूल व्यवहार करने के नियमों पर जीवन का विकास निर्भर है। वंश-परम्परा के नियम का पशुवर्ग में साम्राज्य है ; परन्तु कालानुकूल चलने या शिक्षा का मनुष्य-योनि में साम्राज्य है। यही कारण है कि मनुष्य पशुओं व वनस्पति से श्रेष्ठ है। एक सुन्दर छोटा-सा बालक नन्हें पिल्ले के समान अनजान और मूढ़ होता है ; नहीं-नहीं, पिल्ला या तोते का बच्चा मनुष्य के बालक से प्रायः अधिक ज्ञान रखता है। किन्तु अंतर इसमें यह है कि पिल्ला या तोते का बच्चा तो जन्मते ही वंश-परम्परा के नियमानुसार आवश्यक ज्ञान अपने माता-पिता से पा लेता है, परन्तु मनुष्य का बालक कालानुकूल चलने वा शिक्षा द्वारा समस्त संसार अपने अधीन कर सकता है।

मेरे प्यारे हिन्दू-भाइयो ! परिवर्तन या कालानुकूल चलने के नियम से द्वेष करके और प्राचीन रीति-रिवाज तथा वंश-परम्परा के नियमों पर जोर देने से, ईश्वर के लिये, अपने आपको मनुष्यत्व से नीचे मत गिरने दो।

तुम इस देश और काल में रहते हो। तुम भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों की सन्तान हो, किन्तु तुम अब उनके युग (समय) में नहीं रहते हो, क्या यह ठीक है ? तुम्हें अब इंजिन जहाज, और तारघर इत्यादि से वास्ता पड़ा है ; तुम अब वर्तमान संसार से अपने को पृथक् नहीं कर सकते। तुम्हें अब

बीसवीं शताब्दी के योरप और अमेरिका के शास्त्रज्ञ, शिल्पज्ञ और कारीगरों से सामना करना है। तुम इस मुक़ाबले से नहीं बच सकते। यदि तुम विचारपूर्वक ध्यान दोगे, तो तुम्हें पता लग जायगा कि यदि समय की परिवर्तित परिस्थिति में तुम अपने को रहने-योग्य नहीं बना लेते, तो तुम्हारा इस संसार से नामो-निशान मिट जायगा। यदि तुम नवीन प्रकाश को, जो वास्तव में आपकी भूमि का पुराना प्रकाश है, अपनाने में उद्यत और प्रसन्न नहीं होते हो, तो जाओ अपने पूर्वजों के साथ पितृ-लोक में वास करो। यहाँ क्यों ठहरे हुए हो? जाइए, नमस्कार।

राम का यह प्रयोजन नहीं है कि आपका राष्ट्रीयत्व सब नष्ट हो जाय। पौधा बाहर से जल, वायु, खाद और मिट्टी सोख लेता है, तो इससे क्या वह वायु, जल और पृथिवी में बदल जाता है? कभी नहीं। इसी प्रकार आपको भी बाह्य वस्तुएँ ग्रहण कर उन्हें अपनाते हुए अपनी उन्नति और विकास करना चाहिए, परन्तु श्रुति की वास्तविक अवस्था का संचार आपके हृदय व नस-नाड़ी में सर्वदा होते रहना चाहिए।

शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि उसके द्वारा हम अपने देश के समस्त साधनों वा सामग्री का सदुपयोग कर सकें। उचित शिक्षा लोगों को इस योग्य बना देती है कि वे इस के द्वारा पृथिवी की उर्वर (ज़रखेज़) खानों को धनोत्पादक, व्यापार को समृद्ध, शरीरों को उद्योगी, मनों को स्वतः-कल्पना-शील, हृदयों को शुद्ध-पवित्र, कला-कौशल को विस्तृत और राष्ट्र को संगठित पहले से अधिक बना दें। अपना पाण्डित्य दर्शाने के लिये बड़े-बड़े शास्त्रों के प्रमाण देने की योग्यता, प्राचीन ग्रन्थों के वचनों के आशय को मोड़-तोड़ करने का व्यर्थ (मूर्खता-पूर्ण) छिद्रान्वेषण, जीवन-भर बर्ताव में न आनेवाले विषयों का अध्ययन,

इसका नाम शिक्षा नहीं है। व्यवहार में न लानेवाले ज्ञान का मस्तिष्क में ठूँस लेना आध्यात्मिक क़ब्ज़ अथवा मानसिक अजीर्ण है।

यह बात सन्तोषजनक है कि ऊपरी उत्साह-भंग और उग्र किन्तु निर्जीव विरोधों के होते हुए भी धीरे-धीरे किन्तु निश्चयपूर्वक हिन्दू-भाई उचित शिक्षा पा रहे और आवश्यक कालानुकूल व्यवहार भी दर्शा रहे हैं। पुराने व प्राचीन समयों के सामाजिक बन्धन धीरे-धीरे ढीले पड़ते जा रहे हैं और वर्ण-व्यवस्था दिन-प्रतिदिन अपनी असली स्थिति पर आ रही है। पाश्चात्य साइंस का तिरस्कार करने के स्थान पर हिन्दू आज उसे अपनी ब्रह्म-विद्या (श्रुति) का भारी सहकारी समझते हुए उसका सत्कार कर रहे हैं।

हिन्दू-विवाह के सम्बन्ध में, भिन्न-भिन्न हिन्दू-जातियाँ, प्रायः कट्टर सनातनधर्मी और विद्वान् पण्डितों के आधिपत्य में, विवाह में आयु की अवधि बढ़ानेवाले नियमों का विधान कर रही हैं। और कभी-कभी उपयुक्त अन्तरजातीय विवाह को भी चुपके से स्वीकार कर लेती हैं।

प्रत्यक्ष में भोजन का प्रश्न हिन्दुओं में इतना अनुचित विस्तार पकड़ गया है कि कुछ लोगों ने हमारे धर्म का नाम केवल 'चौके-पाटे का धर्म' (Kitchen religion) रख दिया है। परन्तु इस सम्बन्ध में इतना कोलाहल मचने पर भी हमारी शक्ति अनुचित ओर बह रही है और अत्यन्त व्यर्थ जा रही है। शास्त्रीय रीति से हमने कभी ऐसी विवेचना नहीं की कि हमें क्या और कैसे आहार करना चाहिए। जैसा आपका आहार होगा, वैसा आप का विचार और आचार हो जायगा। जो वस्तु मैशीन में न डाली गई हो, वह आप मैशीन से कैसे प्राप्त कर सकते

हैं। जो मनुष्य पट्ठों और मस्तिष्क को पुष्ट करनेवाला आहार नहीं खाते, उनसे शारीरिक और मानसिक (मस्तिष्क-सम्बन्धी) काम की आशा करना नितान्त मूर्खता है। भाजी, तरकारी, अनाज और फलों में से हम आसानी से ऐसी उचित वस्तुएँ चुन सकते हैं, जिनसे मानसिक तथा शारीरिक शक्ति सुरक्षित रखने के लिये यथेष्ट नाईट्रेट (Nitrates) और फासफेट (Phosphates) मिल सकें। क्या यह खेद की बात नहीं कि हम घी को इतना महत्त्व देते हैं जबकि उसमें दिमाग़ और पट्ठों को बनाने का कोई अंश नहीं, और जौ को तुच्छ समझते हैं जो कि विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त उत्तम आहार है? मिर्च, मसाला तथा ओषधियाँ हमारे शरीर-यन्त्र को गड़बड़ में डाल देती हैं, हमारे स्वाभाविक स्वाद को बदल देती हैं, और सर्व-प्रकार की दुर्बलता, बीमारी तथा मृत्यु को बुला लेती हैं। मक्खन, चीनी और नशास्ता-जैसे कारबोनेट पदार्थों को, जो केवल फेफड़ों के लिये ईंधन का काम देते हैं किन्तु पट्ठों और दिमाग़ को किसी प्रकार से पुष्टि नहीं देते, सब से अधिक महत्त्व दिया जाता है। और इसका परिणाम यह होता है कि आलस्य, निद्रा, तन्द्रा और थकावट का रहना अनिवार्य हो जाता है। ज्ञान (साइंस, विद्या) को हमारे भोजन का पथ-दर्शक होना चाहिए।

भारतवर्ष के साधु इस देश के लिये एक अद्भुत और अद्वितीय दृश्य हैं। जिस प्रकार तालाब के पानी पर हरी काई जम जाती है, वैसे ही भारतवर्ष में साधु फैले हुए हैं। इस समय ये पूरे बावन लाख की संख्या में हैं। इनमें से कुछ साधु तो निस्सन्देह सुन्दर कमल हैं, जो तालाब व सरोवर की शोभा बढ़ा रहे हैं; किन्तु अधिकांश इनमें रोगोत्पादक काई-रूपी मल हैं। ज़रा जल को बहने दीजिए, मनुष्यों में जीवन-संचार

होने दीजिए, काई-रूपी मल शीघ्र बह जायगा। ये साधु भारत-वर्षीय इतिहास के गत अवनत-काल के स्वाभाविक परिणाम हैं। परन्तु आजकल सुधार का साधारण प्रभाव जितना गृहस्थियों के स्वभाव व रुचियों को बदल रहा है, उतना साधुओं में भी परिवर्तन पैदा कर रहा है। अब ऐसे साधु उत्पन्न हो रहे हैं जो राष्ट्रीय वृक्ष पर जोंक और आकाश-बेल (प्राण-नाशक) बने रहने के स्थान पर मन और शरीर से यदि अधिक नहीं तो इस वृक्ष की खाद बनने के इच्छुक हैं। मेहनत व मज़दूरी के आदर का भाव तथा निष्काम कर्म का धर्म, जो आज तक लाखों गीता-भक्तों का ज़बानी जमा-खर्च था, अब भगवान् कृष्ण की भूमि में लाचार थोड़ा-बहुत बर्ताव में आता अनुभव हो रहा है।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ;
सिद्ध्यसिद्ध्योः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते। (गी० २.४८)

अर्थ—हे अर्जुन! योग में स्थित हुआ, कर्म-संग का त्याग कर और सिद्धि-असिद्धि में सम होकर तू कर्मों को कर। यह समता ही योग कहलाती है।

"And live in action! Labour;
Make thine acts thy piety:
Casting all self aside;
Contemning gain and merit;
Equable in good or evil;
Equability is Yoga, is piety!" (Gita. 2. 48)

कुछ साधु और गृहस्थों में प्रबल भक्ति और तीव्र विवेक दिखाई पड़ता है। जिस किसी को भारतवर्ष की बाह्याभ्यन्तर तथा प्राचीन व अर्वाचीन स्थिति विदित है, वह यह सुगमता से

भान कर सकता है कि व्यावहारिक वेदान्त अथवा भक्ति कर्मयुक्त संन्यास ही शिक्षित भारतवर्ष का भावी धर्म होगा।

व्यावहारिक वेदान्त

(या भक्तिपूर्वक कर्म-युक्त संन्यास)

सच्ची भक्ति और सच्चे ज्ञान से सत्य-कर्म पृथक् नह सकता। हमारे जीवन के प्रत्येक कर्म, भाव और विचार श्रुति-धर्म (व्यावहारिक वेदान्त) एक यज्ञ (देवताओं के आहुति) बना देता है।

वेदान्त की परिभाषा में देव का अर्थ भिन्न-भिन्न इन्द्रिये प्राण और प्रकाश देनेवाली शक्ति है; और किसी एक इं के देवता से अभिप्राय ब्रह्माण्ड की समष्टि इन्द्रिय है, आध्यात्मिक और आधिदैविक। चक्षुर्देवता सब प्राणियों चक्षु है, जो आदित्य कहलाता है, और जिसका चिह्न (मू ब्रह्माण्ड का नेत्र अर्थात् भौतिक सूर्य है। हस्तेन्द्रिय का दे सब हाथों की शक्ति है, जो इन्द्र कहलाती है। पाद-देवता पैरों की शक्ति है, जिसे विष्णु कहते हैं। इसी प्रकार अन्य देवताओं के विषय में समझिए। इस तरह देव-यज्ञ से ठीक-ठ अभिप्राय अपनी व्यष्टि इन्द्रियों को ब्रह्माण्ड की समष्टि इन्द्रि में अर्पण करना है। इन्द्र देवता को आहुति देने से तात्पर्य भूमि पर समस्त हाथों के हित में अपना व्यष्टि हाथ अ करना है, अर्थात् देश के सब हाथों के हित में काम क इन्द्र-देव-यज्ञ है। आदित्य देवता को आहुति देने से अभि ब्रह्माण्ड के सब नेत्रों में ईश्वर का अस्तित्व भान करना अर्थात् सब नेत्रों का सम्मान और आदर करना; अ अनुचित व्यवहार से किसी की दृष्टि को कुपित न करना; बा

जिस किसी की भी दृष्टि अपने पर पड़े, उससे प्रसन्नता, आशीर्वाद और प्रेम से पेश आना ; अपनी व्यष्टि नेत्र-इन्द्रिय को ब्रह्माण्ड की समष्टि नेत्र-इन्द्रिय के लिये ऐसी अत्यन्त प्रीति वा भक्ति से अर्पण करना कि परिच्छिन्न अहंकार का अधिकार नितान्त लुप्त हो जाय और समष्टि नेत्र (आदित्य) स्वयं आपके नेत्रों द्वारा ही भासमान होने लगे ; यह आदित्य-देव-यज्ञ है। बृहस्पति देवता को आहुति देने से अभिप्राय अपनी व्यष्टि बुद्धि को देश की समष्टि बुद्धि के अर्पण करना है, अथवा देश की भलाई में इस प्रकार चिन्तन करना है कि जिससे हम में और हमारे देश-निवासियों में कोई अन्तर न रहे, और देश के कल्याण में अपना कल्याण तथा देश के आनन्द में अपना आनन्द भान होने लगे।

संक्षेपतः यज्ञ से अभिप्राय अपने आपको ठीक अपने पड़ोसी, अपने आपको समस्त से अभेद तथा सबका आत्म-स्वरूप होने में अपने तुच्छ अहंकार का नाश अनुभव करते हुए उसको कार्य में परिणत करना है। यही है स्वार्थता का सूली पर चढ़ना, और यही है समष्टि आत्मा का पुनरुत्थान। इसका एक अंग (रूप) साधारणतः भक्ति और दूसरा अंग (रूप) ज्ञान कहलाता है। ॐ, ॐ, ॐ।

Take my life and let it be
Humbly offered, All, to Thee.
Take my hands and let them be
Working, serving Thee, yea ! Thee.
Take my heart and let it be
Full saturated, Lord, with Thee.

Take my eyes and let them be
Intoxicated, God, with Thee.
Take this mind and let it be
All day long a shrine for Thee. (Rama)

अर्थ— (बरवा छन्द)

१—मम सर्वस स्वीकारहु, हे कृपानिधान !
अर्पहुँ दोउ कर जोरे, मैं श्री भगवान !
२—स्वीकारहु हाथन को, हे श्री महराज !
तव सेवा के कारण, मैं अर्पौं आज।
३—हृदय मोर स्वीकारहु, हे अति निष्काम !
तव मूरति हिय भासै, सब सुख की धाम।
४—नयन मोर स्वीकारहु, हे श्री जगदीश !
भक्ति-धुध ह्वै जावैं, मैं नावौं शीश।
५—चित्त मोर स्वीकारहु, तुम अहो सुजान !
मन्दिर होय तुम्हारो, कछु हेतु न आन।
६—अस न रहे कछु मोपै, जो होवे मोर ;
फुरै मोर सब तुममें, नहि दूसर ठौर। (प्रकाश)

यह उक्त समर्पण पूर्णता पर पहुँचने के पश्चात् 'तत्त्वमसि' (वह ब्रह्म तू ही है) इस महावाक्य का आनन्दमय स्वरूप अनुभव होता है।

आप स्वदेशानुरागी वा स्वदेशभक्त हुआ चाहते हैं ? तब अपने आपको देश तथा देश-बन्धुओं के प्रेम में एकताल (अभेद) करो, उनके साथ अपनी एकता अनुभव करो। आपकी यह परिच्छिन्न व्यक्ति की छाया भी आपमें और आपके देश-बन्धुओं में एक पतला काँच का पर्दा तक न होने पाये। अपने प्राणों को स्वदेश-हित में अर्पण करते हुए आप एक सच्चे

आध्यात्मिक योद्धा बनिए। क्षुद्र अहंकार के त्याग से स्वयं समस्त देश-रूप होने पर आपके मन में जो विचार उत्पन्न होगा, वह आपका ही नहीं, किन्तु सारे देश का होगा। तुम चलो, देश तुम्हारे साथ चलेगा। तुम चित्त में स्वास्थ्य का ख़्याल करो, आप के देशबन्धु स्वस्थ हो जायँगे। आपका बल उनके नस-नाड़ी में धड़कने लगेगा। ओह! मुझे निश्चय करने दीजिए कि—

"मैं भारतवर्ष, समस्त भारतवर्ष हूँ। भारत-भूमि मेरा अपना शरीर है। कन्याकुमारी मेरा पावँ है। हिमाचल मेरा शिर है। मेरे बालों से श्रीगंगाजी बहती हैं। मेरे शिर से सिन्धु और ब्रह्मपुत्र (नद) निकलते हैं। बिन्ध्याचल मेरी कमर के गिर्द कमरबन्द है। कुरुमण्डल मेरी दाहिनी और मालाबार मेरी बाईं जंघा (टाँगें) हैं। मैं समस्त भारतवर्ष हूँ। इसकी पूर्व और पश्चिम दिशाएँ मेरी दोनो भुजाएँ हैं, और मनुष्य-जाति को अलिंगन करने के लिये मैं उन भुजाओं को सीधा फैलाता हूँ। आहा! मेरे शरीर का ऐसा ढाँचा (वा आकार) है। यह सीधा खड़ा है और अनन्त आकाश की ओर दृष्टि दौड़ा रहा है। परन्तु मेरी वास्तविक आत्मा सारे भारतवर्ष की आत्मा है। जब मैं चलता हूँ, तो अनुभव करता हूँ कि यह सारा भारतवर्ष चल रहा है। जब मैं बोलता हूँ, तो मैं भान करता हूँ कि यह भारतवर्ष बोल रहा है। जब मैं श्वास लेता हूँ, तो महसूस करता हूँ कि यह भारतवर्ष श्वास ले रहा है। मैं भारतवर्ष हूँ, मैं शंकर हूँ, मैं शिव हूँ।"

स्वदेश-भक्ति का यह अति उच्च अनुभव है, और यही 'व्यावहारिक वेदान्त' है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

राष्ट्रीय धर्म

"So many sects, so many creeds,
So many paths that wind and wind,
While just the art of being kind.
Is all the sad world needs."

अर्थ— (शिखरिणी छन्द)

अनेकों पंथी हैं, बहुत मत भी हैं जगत में,
अनेकों धर्मी हैं प्रसरित चतुर्दिक भुवन में ;
अपेक्षा तो भी है दुखित जग को एक गुण की—
बता देवे कोई सदय बनने के यतन को।

—'प्रकाश'

सूर्य अस्त होने का समय है। गहरी साँसों से निम्नांकित गीत गाया जा रहा है और बहते हुए आँसुओं से लिखा जा रहा है—

"I saw a vision once, and it sometimes reappears;
I know not if, 'twas real, for they said I was not well.
But often as the Sun goes down, my eyes fill up with tears,
And then that vision comes and I see my Florimel (India).

The day was going softly down, the breeze had died away;
The waters from the far West came slowly rolling on.
The sky, the clouds, the ocean wave, one molten glory lay;
All kindled into crimson, by the deep red Sun.

As silently I stood and gazed before the glory passed,
There rose a sad remembrance of days long gone;
My youth, my childhood came again, my mind was overcast,
As I gazed upon the going down of that red Sun.

The past upon my spirit rushed, the dead were standing near;
Their cheeks were warm again with life, their winding sheets were gone.
Their voices rang like marriage-bells once more upon my ear;
Their eyes were gazing there with mine on that red Sun.

Many days have passed since then, many chequered years;
I have wandered far and wide, still I fear I am not well;
For often as the Sun goes down, my eyes fill up with tears,
And then that vision comes, and I see my Florimel.

अर्थ— (बहरे-तवील)

दृश्य जो एक दफ़ा था लखा आँख से, वह कभी सामने मेरे आ जाता है ;
ज्ञात मुझको नहीं, वह था सत् या असत्, क्योंकि अस्वस्थ था, मै कहा जाता है।
किन्तु बहुधा दिवाकर के छिपते समय लोचनों में सुजल मेरे भर आता है ;
और तब दृश्य आता पुनः मोदमय, मेरा भारत दुलारा नज़र आता है।

मंद गति से इधर ढल रहा था दिवस, चाल धीमी हवा ने उधर ली पकड़ ;
पश्चिमी सिन्धु में दूर से आगे बढ़, धीरे-धीरे तरंगें रही थीं उमड़।
मेघ-माला, गगन और सागर-तरंगों का सम्मिश्र सौंदर्य दिखलाता था ;
और गम्भीर आरक्त दिनकर-छटा से सुलाली लिए दृश्य दिखलाता था।

मै खड़ा चुप रहा देखता दृश्य को, लुप्त जब तक न वह आँख से हो गया ;
तब गये दूर दिन की हुई सुध मुझे, दुःखमय भाव सारा उदय हो गया।

मेरा शिशुपन, जवानी, मुझे याद आते ही मन में उदासी मेरे छा गई;
देखता मैं रहा जब कि उस अस्तमित लाल रवि को दया-सी मुझे आ गई।

भूत युग जल्द मेरे निकट आ गया, पास मृतकों का मजमा खड़ा हो गया;
उनके उतरे कफ़न, प्राण आये, तो गालों का रंग उनके फिर लाल-सा हो गया।
ब्याह-बाजों-सी उनकी सुरीली सदा, एकदा मेरे कानों में आने लगी;
लाल रवि की तरफ़ उनकी आँखें मेरी आँख के साथ नज़रें मिलाने लगी।

बीते तबसे बहुत दिन तथा दुःख-सुखमय बरस भी बिताये अनेकों कहीं;
दूर तक मैं चतुर्दिक फिरा घूमता, मैं हूँ अस्वस्थ, संशय गया यह नहीं।
क्योंकि जब प्रायः यह सूर्य है डूबता, अश्रु-जल आँख में मेरे भर आता है;
और तब दृश्य आता पुनः मोदमय, मेरा भारत दुलारा नज़र आता है।

—'प्रकाश'

ऐ डूबते हुए सूर्य! तू भारत-भूमि पर निकलने जा रहा है। क्या तू कृपा करके राम का यह संदेशा उस तेजोमयी प्रतापी माता की सेवा में ले जायगा? क्या ही अच्छा हो, यदि यह मेरे प्रेम-पूर्ण आँसू भारत के खेतों में पहुँचकर ओस की बूँदें बन जायँ। जैसे एक शैव शिव की पूजा करता है, वैष्णव विष्णु की, बौद्ध बुद्ध की, ईसाई ईसा की और मुसलमान मोहम्मद की, वैसे ही मैं प्रेमाग्नि में निमग्न चित्त से भारत को शैव, वैष्णव, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, संन्यासी, अछूत, इत्यादि भारत-सन्तान के प्रत्येक बच्चे के रूप में देखता और पूजता हूँ। ऐ भारत-माता! मैं तेरे प्रत्येक रूप में तेरी उपासना करता हूँ। तू ही मेरी गंगी है, तू ही मेरी कालीदेवी है, तू ही मेरी इष्टदेवी है और तू ही शालग्राम है। भगवान् कृष्णचन्द्र, जिनको भारत की मिट्टी खाने की रुचि थी, उपासना की चर्चा करते हुए कहते हैं कि जिनका मन

अव्यक्त की ओर लगा हुआ है, उनके लिये बहुत-सी कठनाइयाँ हैं, क्योंकि अव्यक्त का रास्ता प्रत्येक के लिये अत्यन्त कठिन है।

ऐ मेरे प्यारे कृष्ण! मुझे तो अब उस देवता की उपासना करने दे जिसकी समस्त पूँजी एक बूढ़ा बैल, एक टूटी हुई पलँगड़ी, एक पुराना चिमटा, थोड़ी-सी राख, नाग और एक ख़ाली खोपड़ी है। क्या यह महिम्न-स्तोत्र के महादेव हैं? नहीं, नहीं। ये तो साक्षात् नारायण-स्वरूप भूखे भारतवासी हैं। यही मेरा धर्म है, और भारत के प्रत्येक मनुष्य का यही धर्म, यही साधारण मार्ग, यही व्यावहारिक वेदान्त और यही भगवान् की भक्ति होना चाहिए। केवल कोरी शाबाशी देने या थोड़ी-सी सहिष्णुता दिखाने से काम नहीं चलेगा। भारत-माता के प्रत्येक पुत्र से मैं ऐसा क्रियात्मक सहयोग चाहता हूँ जिससे वह दिन-प्रतिदिन बढ़नेवाले राष्ट्रीय जीवन का चारो ओर संचार कर सके। संसार में कोई भी बच्चा शिशुपन के विना युवावस्था को प्राप्त नहीं हो सकता। इसी तरह कोई भी मनुष्य उस समय तक विराट् भगवान् से अभेद होने के आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि समस्त राष्ट्र के साथ अभेद-भाव उसकी नस-नस में पूरा जोश न मार ले। भारत-माता के प्रत्येक पुत्र को समस्त देश की सेवा के लिये इस दृष्टि से तैयार रहना चाहिए कि "समस्त भारत मेरा ही शरीर है।" भारतवर्ष का प्रत्येक नगर, नदी, वृक्ष, पहाड़ और प्राणी देवता माना और पूजा जाता है। क्या अभी वह समय नहीं आया जब हम अपनी मातृभूमि को देवी मानें और इसका प्रत्येक परमाणु हमारे मन में सम्पूर्ण देश के प्रति देश-भक्ति उत्पन्न कर दे? जब प्राण-प्रतिष्ठा करके हिन्दू लोग दुर्गा की प्रतिमा को साक्षात् शक्ति मान लेते हैं, तो

क्या यह ठीक नहीं कि हम अपनी मातृभूमि की महिमा को प्रकाशित करें और भारत-रूपी सच्ची दुर्गा में जीवन और प्राण की प्रतिष्ठा करें ? आओ, पहले हम अपने हृदयों को एक करें, फिर हमारे शिर और हाथ अपने आप मिल जायँगे।

संसार के महापुरुष योगिराज श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि मनुष्य अपने श्रद्धा और विश्वास का बना हुआ पुतला है। जैसा जिसका विश्वास होता है, वैसा ही वह हो जाता है।

ऐ प्यारे धर्मनिष्ठ भारतवासियो ! शास्त्रों को ठीक-ठीक बर्ताव में लाओ। देश का आपद्धर्म तुमसे यह कह रहा है कि जाति-पाँति की कड़ी जंजीरों को कुछ ढीला करके इन उग्र भेद-भावों को राष्ट्रीय भावना के अधीन कर दो। क्या तुम नहीं देखते कि जिस भारत ने सारे संसार के भगोड़ों को अपने यहाँ शरण दी, और संसार की विभिन्न जातियों का पेट पाला, वही भारत आज अपने प्यारे पुत्रों को सूखी रोटी देने में अशक्त हो रहा है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी उचित स्थिति प्राप्त करने के लिये पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। हमारे शिर चाहे जितने ऊँचे रहें, किन्तु पैर सब के समतल भूमि पर ही रहना चाहिए। कभी किसी के कंधों और गर्दनों पर पैर धरने की इच्छा न करो, चाहे वह कितना ही कमज़ोर क्यों न हो, या स्वयं इसके लिये राज़ी ही क्यों न हो।

ऐ नवयुवक भावी सुधारको ! भारतवर्ष के प्राचीन धर्म और रीति-रिवाज का अपमान न करो। भारतवासियों में फूट का नया बीज बोने पर इनमें एकता लाना अत्यन्त कठिन हो जायगा। भारतवर्ष की भौतिक अवनति, भारत का धर्म एवं परमार्थ-निष्ठा का दोष नहीं है; बरन् भारत की विकसित और हरी-भरी फुलवारियाँ इसलिये लुट गईं कि उनके आस-पास

काँटों और झाड़ियों की बाड़ नहीं थी। काँटों और झाड़ियों की बाड़ अपने खेतों के चारो ओर लगा दो, किन्तु उन्नति और सुधार के बहाने सुन्दर गुलाब के पौधों और फलवाले वृक्षों को न काट डालो। प्यारे काँटो और झाड़ियो ! तुम मुबारक हो, तुम्हीं इन हरे-भरे लहलहाते हुए खेतों के रक्षक हो, तुम्हारी इस समय भारतवर्ष में बहुत ज़रूरत है।

जब राम शूद्रों के परिश्रम का गुण-गान करता है, तो इससे यह प्रयोजन नहीं कि राम तमोगुण को रजोगुण और सतोगुण से अच्छा समझता है; बरन् असली तात्पर्य यह है कि भारत में चिरकाल से हम तमोगुण से घृणा करते आये हैं और घृणा की क्रिया से ही तमोगुण हम में बेहद बढ़ गया है। अब हमको चाहिए कि तमोगुण का उपयोग करना सीखें और उसको लाभदायक बनायें।

भला बाग़-बग़ीचे क्योंकर उग सकते हैं, यदि हम कूड़ा-कर्कट और पाँस बाहर फेंक दें और उसका सदुपयोग न करें।

तमोगुण-रूपी कोयले के विना रजोगुण-रूपी अग्नि एवं सतोगुण-रूपी प्रकाश नहीं हो सकता। जिस देश में कोई आन्दोलन उत्पन्न करना हो, तो उसमें तमोगुण-रूपी कोयला जितना अधिक होगा, उतनी ही राजसी अग्नि और सात्विकी प्रकाश अधिक बढ़ेगा। यह ख़याल वर्तमान मास्तिष्क-विद्या (Phrenology) के सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल है कि शूर-वीरता, बहादुरी और चरित्र-बल के लिये केवल सदाचार और मास्तिष्किक शक्तियों का विकास ही पर्याप्त नहीं है, बरन् मनुष्य में तमोगुण या पाशविक शक्ति भी पूर्ण रीति से होनी चाहिए। यही कारण है कि हिन्दू देवाधिदेव महादेवजी को तमोगुण का मालिक वा शासक मानते हैं।

यदि हम भारतवर्ष के इस विपत्ति-ग्रस्त समय में उत्पन्न हुए हैं, तो हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए, क्योंकि हमको अपने स्वदेश-भाइयों की सेवा करने का ख़ूब अवसर मिला है। हमें जो काम मिला है, वह बहुत ही निराला, सुरीला और प्रगतिशील (Dynamic) है। यह कहावत प्रसिद्ध है कि जो ख़ूब सोता है, वह ख़ूब जागता है। भारतवर्ष ख़ूब सोया, इसलिये इसकी जागृति भी ख़ूब होगी। अब हमको भारत के पुत्रों में गुण-ग्रहण करने का स्वभाव, भ्रातृ-भाव, सहयोग की प्रवृत्ति, यथायोग्य कार्य-विभाग और परिश्रम की श्रेष्ठता उत्पन्न करनी चाहिए; केवल छिद्रान्वेषण से काम चलाना दुस्तर होगा।

ओह! इस देश की कितनी शक्ति भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के परस्पर गाली-गलौज देने में नष्ट हो रही है। हमें उन सिद्धांतों का पता लगाना चाहिए जिनमें हम सब सहमत हैं, और उन्हीं पर ज़ोर देना चाहिए। कुछ मनुष्यों पर आर्य-समाज का ही प्रभाव हो सकता है, सनातन-धर्म का नहीं; कई ऐसे हैं जिन्हें ब्रह्म-समाज ही अच्छा मालूम होता है; किसी को वैष्णव-धर्म ही प्यारा है। हमें क्या अधिकार है कि हम उन मनुष्यों को बुरा-भला कहें, जो उस आनन्द और शक्ति की परवाह नहीं करते जो हमारा धर्म हमें दे रहा है। जो हमारे साथ आना चाहते हैं, वे आवें; जो ठहरना चाहें, वे ठहरें और जो न ठहरना चाहें, वे न ठहरें। संसार कुछ कहे, हमें अपने काम से काम। हमें या तुम्हें क्या अधिकार है कि हरएक को अपने सम्प्रदाय में ही सम्मिलित कर लें। मेरा अधिकार तो प्रत्येक की सेवा करना है, अर्थात् उनकी भी सेवा जो मुझसे प्रेम करते हैं और उनकी भी जो मुझसे द्वेष करते हैं। माता उन्हीं बच्चों को अधिक

प्यार करती है, जो अधिक दुर्बल और कृश होते हैं। क्या वे सब लोग जो तुमसे सहमत नहीं हैं, भ्रांति में पड़े हुए हैं? ऐसा हो भी, तो उनकी भी देश के लिये अत्यंत आवश्यकता है। ऐसे चलनेवाले मनुष्य की क्या दशा होगी, जो केवल एक टाँग के बल से फुदकता फिरता है। सच्ची शिक्षा यह है कि प्रत्येक वस्तु को ईश्वरीय दृष्टि से देखा जाय।

हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो।
समदर्शी प्रभु नाम तिहारो सोई पार करो;
हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरो;
जब दोनो मिलि एक बरन भई, गंगा नाम परो।
हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो।
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो;
सो दुबिधा पारस नहिं राखत, कंचन करत खरो।
हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो।
समदर्शी प्रभु नाम तिहारो, सोई पार करो;
हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो।

O Lord, look not upon my evil qualities!
Thy name, O Lord, is Same-Sightedness;
By thy touch, if Thou wilt,
Thou cans't make me pure.
One drop of water is in the sacred Jamuna,
Another is foul in the ditch by the roadside;
But when they fall into the Ganges,
Both alike beccme holy.
One piece of iron is the Image in the temple

Another is the knife in the hand of the butcher ;
But when they touch the philcsopher's stone,
Both alike turn to gold.
So, Lord, look not upon my evil qualities !
Thy name, O Lord, is Same-Sightedness,
By thy touch, If Thou wilt,
Thou cans't make me pure.

हमें अपने व्यक्तिगत और घरेलू धर्म को राष्ट्रीय धर्म से उच्च पद न देना चाहिए। इनको उपयुक्त स्थान पर रखने से ही परम सुख प्राप्त होता है।

देश और राष्ट्र की उन्नति के लिये काम करना ही आधिदैविक शक्तियों वा देवताओं की पूजा करना है। आज भारत-माता के निमित्त इस प्रकार के यज्ञ या बलिदान की आवश्यकता है। गीता के निम्न-लिखित श्लोक का आजकल इसी यज्ञ से अभिप्राय लगाना चाहिए—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ;
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्। (३.१३)

अर्थ—जो मनुष्य यज्ञ से बचे हुए प्रसाद को खाते हैं, वे समस्त पापों से शीघ्र छुटकारा पाते हैं; किन्तु जो केवल अपने पेट को भरने के लिये ही पकाते हैं, वे पापी पाप को भोगते हैं।

ईश्वरानुभव के लिये संन्यासी का-सा भाव रक्खो। भारत-माता की महान्-आत्मा से अपनी लघु-आत्मा को अभेद करते हुए अपने स्वार्थ का नितान्त त्याग करो। ईश्वरानुभव अर्थात् परमानन्द को पाने के लिये सच्चे ब्राह्मण बनो, अर्थात् अपनी बुद्धि को देश-हित-चिन्तन में अर्पण करो। आत्मानन्द

के अनुभव के लिये सच्चे क्षत्री बनो, अर्थात् अपने देश के लिये प्रतिक्षण अपने जीवन की आहुति देने को तैयार रहो। परमात्मा को पाने के लिये सच्चे वैश्य बनो, अर्थात् अपनी सारी सम्पत्ति को केवल राष्ट्र की धरोहर समझो। इहलोक या परलोक में राम भगवान् या पूर्णानन्द को प्राप्त करने के लिये अपने परोक्ष धर्म को अपरोक्ष-रूप (व्यावहारिक) बनाओ, अर्थात् तुमको पूर्ण संन्यास-भाव ग्रहण कर सच्चे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की शूरवीरता धारण करनी होगी। और जो सेवा पहले पवित्र शूद्रों का कर्तव्य था, उसे अपने हाथ-पैरों से स्वीकार करना होगा। अछूत-जातियों के कर्तव्य-पालन में संन्यासी-भाव का संयोग होना चाहिए। आजकल कल्याण का केवल एक यही द्वार है।

उठो! जागो! अब सोने का समय नहीं रहा!

आजकल अन्य देश भी जगद्गुरु भारतवर्ष को अपने आचरण से इसी धर्म की शिक्षा दे रहे हैं।

जिस समय एक जापानी नवयुवक को इस कारण सेना में प्रविष्ट होने से रोका जाता है कि उसके बाद उसकी बूढ़ी माँ की सेवा करने को कोई न रहेगा, तो उस समय बुढ़िया माँ अपने राष्ट्रीय धर्म को अपने व्यक्तिगत और घरेलू धर्म पर विशेषता देकर आत्म-हत्या कर लेती है, जिससे उसके पुत्र को अपने देश के सम्मान में अपने प्राण न्योछावर करने का अवसर मिले।

आदर्श-स्वरूप, प्रतापी, श्रीगुरु गोविन्दसिंह का राष्ट्रीय धर्म के लिये अपने व्यक्तिगत, घरेलू और सामाजिक धर्म को त्याग देने की वीरता के बराबर और क्या वीरता हो सकती है? लोग शक्ति प्राप्त करने के पीछे मरे जाते हैं; किन्तु वे यह नहीं समझते कि राष्ट्र की समष्टि आत्मा के साथ अपनी व्यष्टि

आत्मा के अभेद करने पर उनके हाथ में कितनी अनन्त शक्ति आ जायगी। अंत में, राम इसलाम के पैग़म्बर (हज़रत मोहम्मद) के मधुर शब्दों में इस भाव को दर्शाता है—

"यदि सूर्य मेरी दाहिने ओर और चन्द मेरी बाईं ओर खड़े हो जायँ और मुझे पीछे हटने को कहें, तो भी मैं उनकी आज्ञा कदापि-कदापि नहीं मानूँगा !"

हम रूखे टुकड़े खायेंगे, भारत पर वारे जायेंगे।
हम सूखे चने चबायेंगे, भारत की बात बनायेंगे ;
हम नंगे उमर बितायेंगे, भारत पर जान मिटायेंगे।
सूलों पर दौड़े जायेंगे, काँटों को राख बनायेंगे ;
हम दर-दर धक्के खायेंगे, आनँद की झलक दिखायेंगे।
सब रिश्ते-नाते तोड़ेंगे, दिल इक आतम-सँग जोड़ेंगे ;
सब विषयों से मुँह मोड़ेंगे, शिर सब पापों का फोड़ेंगे।

—राम

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

राम का

भारत के नवयुवकों को संदेश

(यह लेख स्वामी राम ने यंगमेंस इंडियन ऐसोसियेशन, लाहौर के वार्षिक उत्सव पर पढ़ने के लिये लाला हरदयालजी एम्० ए० के पास भेजा था)

एकता, एकता, एकता। प्रत्येक व्यक्ति एकता की आवश्यकता का अनुभव कर रहा है। लाखों शक्तियाँ हैं, किंतु एक-दूसरे के विरुद्ध दिशा में लगी रहने के कारण कोई परिणाम-जन्य शक्ति उत्पन्न नहीं होती। करोड़ों मस्तिष्क और हाथ चल रहे हैं, किन्तु कौन जानता है, किस ओर जा रहे हैं। हजारों मत-मतान्तर अपनी-अपनी नौकाएँ अपनी-अपनी मनमानी दिशा में खेने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्या यह खेना नियमपूर्वक है? यह भारत की वर्तमान दशा है। पतवारों को जहाँ-के-तहाँ रहने दो, अपने-अपने स्थानों पर डटे रहो, हटो मत, किन्तु एक दिशा में खेना आरंभ कर दो। इस प्रकार की एकचित्तता और अनेकता में एकता उन्नति को अवश्य ले आती है। बस अपने-अपने निश्चित स्थानों पर डटे हुए काम करते रहो, और सानंद आगे बढ़ते चलो। राष्ट्रीय हित आपसे यही चाहता है। क्योंकि समस्त के लाभ में प्रत्येक व्यक्ति का हित सम्मिलित है।

इस प्रकार के उपदेश तो यहाँ बहुत बढ़-बढ़कर दिये जाते हैं, तो फिर बताओ अभी तक भारतवर्ष में प्रेम और एकता के भावों का इतना अत्यन्त अभाव क्यों है?

इसके मुख्य कारण ये हैं—

(क) व्यावहारिक बुद्धि की न्यूनता।

(ख) जन-संख्या की अधिकता।

आओ, आज हम इन पर विचार करें।

व्यावहारिक बुद्धि की न्यूनता

मुसलमानी राज्य से पहले ख़ुरासान देश-निवासी अलबरूनी ने इस देश के कोने-कोने की यात्रा की थी। यह एक अनुभवी तत्त्ववेत्ता और बहुत बड़ा विद्वान् हुआ है। उसने संस्कृत-विद्या सीखी और हमारे शास्त्रों को वैसे ही उत्साह के साथ पढ़ा जैसे उसने अरस्तू और अफ़लातून के तत्त्व-ज्ञान को पढ़ा था। वह तत्कालीन भारतवर्ष का विस्तृत वर्णन वैसा ही कर गया है, जैसा उसने अपनी आँखों से देखा था। वह हिन्दुओं के दर्शन, काव्य और ज्योतिष-शास्त्र का अत्यन्त सम्मान एवं आदर के साथ उल्लेख करता है। वह कई एक पंडितों की विद्वत्ता की, जिनसे उसकी भेंट हुई थी, अत्यन्त प्रशंसा करता है। किंतु जन-साधारण की दशा और स्त्रियों की अवस्था को अत्यन्त शोचनीय बतलाता है। वह उन्हें शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अनाथ, उपेक्षित और सब प्रकार पददलित बतलाता है। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक दृष्टि से भी वे छिन्न-भिन्न हैं। यही कारण है कि जनता के अगणित जत्थों-के-जत्थे अपने विक्षिप्त चित्त, दुर्बल शरीर और संगठन के अभाव के कारण मुसलमान-विजेताओं के सामने, जो महमूद ग़ज़नवी के सेनापतित्व में प्रतिवर्ष भारत को लूटने के उद्देश्य से आते हैं, धूलि-कणों के समान उड़ते चले जाते हैं।

इसके पश्चात् बाबर आता है, और भारत-निवासियों की इस तरह शिकायत करता है—"ये लोग नवीन वस्तु के उत्पन्न करने की

कर्ताओं पर समाज का लांछन और समाज पर कार्य-कर्ताओं का लांछन लाता है, और परस्पर छिद्रान्वेषण की बुद्धि उत्पन्न करता है, जिससे परस्पर द्वेष-भावना, ग़लत-फ़हमी और अनबन वा फूट उत्पन्न हो आती हैं। क्या इस फूट से बचने के लिये हम उन बातों को यों ही अटकल-पच्चू चलने दें और "हमको अपने मतलब से काम" ऐसा समझकर अपने पर झाड़ दें? "हमको अपने उद्धार से काम, समाज पड़े चूल्हे-भाड़ में" ओह! कहीं ऐसा संभव होता, तो क्या ही अच्छा था। डूबता समाज तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगा। यदि वह डूबेगा, तो तुम को उसके साथ डूबना होगा और यदि वह उठेगा, तो तुमको उसके साथ उठना होगा। मानो समाज कहता है—

हम जो डूबेंगे तो फिर तुमको भी ले डूबेंगे;
हम जो उट्ठेंगे तभी तुमको भी ले उट्ठेंगे।

ऐसा निश्चय करना कि कोई असंपन्न व्यक्ति समाज में संपन्न हो सकता है, सरासर मूर्खता वा नासमझी है। यह ठीक ऐसा ही है कि हाथ धड़ से अलग कटकर शक्ति की पूर्णता को पहुँच जाय।

बहुत काल से भारतवर्ष में इस अवेदांतिक विचार को भारतवासियों ने छाती से लगा रक्खा है, जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज के अस्थि-पंजर ढीले पड़ गये। ऐ उत्तम आशा दिलानेवाले नवयुवकों! भारत का भविष्य तुम्हारा भविष्य है। तुम्हारी भलाई और तुम्हारे देश की भलाई का निर्भर तुम्हीं पर है। कायरों पर ही बहुमत का जादू चला करता है। जनता के विचार और हृदय पर तो सच्ची और जीती-जागती आत्मा ही शासन करती है, चाहे बाहर से नाम-मात्र का कोई और शासक क्यों न हो। बी० ए० या एम्० ए० के दर्जे तो तुम विश्वविद्यालयों

से प्राप्त कर लेते हो, किन्तु कायर और वीर होने के मध्य में स्वयं तुम्हीं को निर्णय करना होगा। बोलो, तुम कौन-सी दशा चाहते हो—दास की या जीवन के सम्राट् की? तुम्हारा ही शक्तिमान् और पवित्र जीवन इतिहास का तुला-यंत्र है। न्यूटन का दूसरा गति-नियम यह सिखाता है कि अन्य वस्तुओं पर जिसकी प्रेरणा से कुछ विकार (परिणाम) उत्पन्न होता है, वह शक्ति है। शताब्दियों से अस्वाभाविक घृणा (द्वेष) और उससे भी बढ़कर उदासीनता का प्रभाव हमारे देश के रीति-रिवाज और मूढ़-विश्वास के मार्ग पर बराबर पड़ता चला आ रहा है। ऐ शिक्षित और सदाचारी नवयुवको! यह अब तुम्हारा काम है कि जीती-जागती शक्तियाँ बनकर इस व्यर्थ वेग को, जिसकी अब आवश्यकता नहीं रही, तुम बदल दो। पुराने आलस्य को पराजित करो। गति के वेग को उधर बदलो, जिधर आवश्यकता है। और जहाँ कहीं कमी हो, उसे उस वेग से पूरा कर दो। साधारण लोगों की चित्त-वृत्ति उसी ओर फेरो, जिधर उचित हो। इस प्रकार अपना काम करते चलो, करते चलो, और अपनी दृढ़ता से इस बात को दिखा दो कि सीली (Seeley)-जैसे इतिहासकारों को, जो भारतवर्ष को केवल 'भविष्य-हीन भूत-कालिक' बतलाते हैं (अर्थात् जो यह कहते हैं कि भारतवर्ष को जो उन्नति करनी थी, उसे वह भूत-काल में कर चुका, अब भविष्य में कोई उन्नति न करेगा), बतला दो कि ऐसा कहनेवाले भारी भूल पर हैं। भूत-काल को ढालकर वर्तमान-काल के अनुसार बनाओ, और वीरता के साथ शुद्ध और प्रबल वर्तमान-काल को भविष्य की दौड़ में डालो। अपने पूर्वजों के रिक्थ माल के बिना हम कुछ नहीं कर सकते। जो समाज

इस पैत्रिक धन को त्याग देता है, वह बाहर से अवश्य नाश हो जाता है। किंतु इस रिक्थ माल की अधिकता से भी हम कुछ न कर सकेंगे। वह समाज जिसमें इस बपौती का ख़्याल सब पर प्रबल है, भीतर से नष्ट हो जायगा। क्या तुम्हारा यह विचार है कि तुममें सच्चा जीवन होने से समाज में झगड़ा व फूट उत्पन्न हो जायगी? जमे हुए डटे रहो, चाहे अकेले ही क्यों न हो। फिरो मत, मुँह न मोड़ो। यही मरदानगी है, यही शूरवीरता है—

अगर्चि क़ुत्ब जगह से टले, तो टल जाये;
अगर्चि बहर भी जुगनू की दुम से जल जाये।
हिमालय बाद की ठोकर से गो फिसल जाये;
और आफ़ताब भी क़ब्ले-उरूज ढल जाये।
मगर न साहबे-हिम्मत का हौसला टूटे;
कभी न भूले से अपनी जबीं पै बल आये।

यदि तुम सत्य के मार्ग से नहीं हटते, तो प्रवाह तुम्हारे साथ है, समय तुम्हारी ओर है, क्षेत्र तुम्हारे हाथ है। लोगों को पिछली महिमा पर उछलने दो, अगली महिमा सब-की-सब तुम्हारी है।

राष्ट्र? क्या वह मेल जो सचाई के लिये न हो, राष्ट्र को बचा सकता है? क्या लोगों को अंधकार में रखकर तुम उनमें मेल उत्पन्न कर सकते हो? क्या प्रमाद और अंध-विश्वास की स्वीकृत दासता से राष्ट्र में ऐक्य लाया जा सकता है? अच्छा मान लो, सब-के-सब मल्लाह एक ही ओर खेने लगें, पर वह रुख़ अगर उलटा हो, अर्थात् वह रुख़ उन्नति व सचाई का मार्ग न हो, तो क्या वह आपको पसन्द होगा? ऐसी नाव तो बहुत शीघ्र किसी चट्टान से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो

जायगी, और कदाचित् जितनी शीघ्र टूटे, उतना ही अच्छा। शारीरिक मिलाप तो केवल स्वर्ग में ही संभव है, परन्तु केवल पवित्रता और सचाई में मिलाप यहाँ हो सकता है। ऐ राष्ट्रीय एकता के चाहनेवालों! राष्ट्र को पहले अनन्त अमानुषिक भ्रान्तियों से मुक्त करो। यदि मनुष्यत्व, सचाई और उन्नति के लिये आज सर्व-साधारण कष्ट पा रहे हैं और कल काम करनेवाले सताये जा रहे हैं, तो इससे स्पष्ट हो रहा है कि देश आध्यात्मिक दृष्टि से अभी जीवित है और नीचे-ऊपर साँस ठीक-ठीक ले रहा है।

यह सच है कि आदर्श आचरण में कोई कष्ट भान नहीं होता, क्योंकि वह मूर्तिमान् शांति वा सुख है और चारो ओर प्रेम तथा प्रकाश फैला रहा है। परन्तु जिस समाज में प्रकाश का आगमन दुःख का कारण माना जाता है, उसमें दुःख-रहित शांति और जागृति लानेवाला प्रकाश दोनो एकसाथ कैसे रह सकते हैं? सो यदि किसी विशेष दशा में तुम आदर्श के अनुसार आचरण नहीं कर सकते, तो जितना कर सको, वह सच्चा तो हो। इसी की अत्यन्त कमी और ज़रूरत है। किसी देश को शक्ति या बल छोटे-छोटे ख़यालवाले बड़े मनुष्यों से नहीं बल्कि बड़े ख़यालवाले छोटे मनुष्यों से मिल सकता है।

शांति? क्या पाशवी निद्रा (तन्द्रा) में शांति रक्खी है? क्या दुर्गन्ध-पूर्ण क़ब्र में शांति है? हम तो जीती-जागती शान्ति चाहते हैं, न कि निर्जीव। लोग तो अँधेरे में गिर-गिर पड़ते हों और तुम प्रकाश को बरतन में छिपा रक्खो। ऐसे प्रकाश से तो यह अच्छा होता कि तुम्हारे पास प्रकाश बिलकुल न होता। जो व्यक्ति ऐसे अवसरों पर अपने कर्तव्य को छोड़कर यथाशक्ति

सहायता-पूर्ण शब्द कहने से पीछे हटता है और चुपचाप रहता है, वह वास्तव में दोषी है।

जन-संख्या की अधिकता

जन-संख्या के विषय पर जो कुछ मालथस (Malthus) व अन्य अर्थ-शास्त्रज्ञों ने कहा है, उस पर विचार करने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। मालथस तो केवल जीव-विद्या (Biology) के निर्णय को दुहराता है। आओ, ज़रा देखें कि प्रकृतिवादी (Naturalists) लोग इस विषय में क्या कहते हैं। हक्सले (Huxley) नई आबादी, जाति या समाज की तुलना उस बाग़ से करता है जो अपने आप उगे हुए जंगल के अन्तर्गत है। सामाजिक विकास का क्रम, या हक्सले जिसको आचार-सम्बन्धी क्रम भी कहता है, उद्यान-विद्या के क्रम से बहुत मिलता-जुलता है। किंतु ये दोनों क्रम निरंकुश प्रकृति वा सृष्टि-क्रम के नितान्त विपरीत हैं। निरंकुश प्रकृति-क्रम की विशेषता यह है कि इसमें जीवन के लिये प्रचण्ड व निरन्तर द्वंद्व मचा रहता है। उद्यान-विद्या और आचार-सम्बन्धी क्रम में यह विशेषता है कि वे इस झगड़े की जड़ उखाड़ते हैं, अर्थात् उन कारणों को दूर कर देते हैं जिनसे ऐसा झगड़ा उत्पन्न होता है। हेनरी ड्रमण्ड (Henry Drummond) दोनो क्रमों की तदात्मकता सिद्ध करने का बड़ा भारी प्रयत्न करता है, किन्तु इस हल्ला-गुल मचाने पर भी वह उन परिणामों से जो डारविन और हक्सले ने निकाले हैं, एक पग या इञ्च भर आगे नहीं बढ़ सका, और न उसको इस बात से इनकार है (जिससे कभी किसी व्यक्ति को भी, जिसके होश-हवास ठीक हैं, इनकार न हो सकेगा) कि यदि माली

स्वयं उत्पन्न होनेवाली घास-फूस को बराबर उखाड़ता न जाय और इसकी अधिकता रोकने के लिये बराबर निराई इत्यादि न करता रहे, तो शीघ्र ही वही निरंकुश सृष्टि-क्रम (Wild process) बाग़ में फिर अपना सिक्का जमा लेता है और फिर संहार करने लग जाता है। अर्थात् शांति एवं उन्नति के साम्राज्य को हटाकर उसके स्थान पर प्राचीन लड़ाई-झगड़ेवाले निर्दयी ढंग से उखाड़-पछाड़ मचाता है। जाति या समाज का भी ठीक ऐसा ही हाल है। जिस समय जन-संख्या अपनी सीमा से बढ़ जाती है, उस समय यदि फालतू आबादी के अलग करने का कुछ प्रबन्ध नहीं किया जाता, तो आये-दिन भयानक लड़ाई-झगड़े खड़े होकर शांति को दूर करते तथा आचार-सम्बन्धी क्रिया का नाश कर देते हैं, और सभ्यता को नष्ट-भ्रष्ट करते हैं, बल्कि लोग ईश्वर की आज्ञाओं को मृत-पत्र (Dead Letter) समझने लगते हैं। ऐसे कठिन समयों में राष्ट्रों में आचार-भ्रष्टता एवं अधःपतन का प्रारम्भ होना अनिवार्य हो जाता है। रोम, यूनान तथा अन्य किसी देश की अवनति और अधःपतन का मूल-कारण यही लोक-संख्या की समस्या थी। आज से बहुत समय पहले ही से भारतवर्ष जन-संख्या की अत्यन्त वृद्धि की नाज़ुक अवस्था पर पहुँच चुका है; किन्तु हमने अभी तक इस मूल कारण को रोकने का कोई यत्न नहीं किया। इस जगतीतल पर कोई ऐसा देश नहीं जो भारत के बराबर ग़रीब हो और साथ ही साथ जन-संख्या में भी इसके बराबर हो। इस देश में एक साधारण या मध्यम श्रेणी का घर समस्त राष्ट्र की अवस्था का एक आदर्श चित्र है। प्रथम तो आमदनी ही बहुत कम और फिर प्रतिवर्ष खानेवालों की संख्या-वृद्धि ही नहीं बल्कि निरर्थक एवं निर्दयता-पूर्ण

रीति-रवाजों की दासता के चंगुल में फँसकर उनमें अनुचित व्यय होता है। जब कि चारा केवल एक या दो के लिये ही हो और जानवरों की संख्या अगणित हो, तो वे भी तो आपस में लड़ मरते हैं। लड़ाई-झगड़े की जड़ को दूर किये विना यह उपदेश देना कि "लड़ो मत, शांति और मेल रक्खो" उपदेश की हँसी उड़ाना नहीं तो और क्या है। हमारे देश-भाई चित्त से भोले-भाले और शांत स्वभाव हैं। उनका हृदय निस्संदेह उत्साह-पूर्ण है। किन्तु वे बेचारे ईर्षा-द्वेष और स्वार्थपरता से कैसे बच सकते हैं, जब कि आवश्यकताओं के कारण विषयासक्ति ने उनको विवश कर रक्खा है। यदि जन-संख्या की समस्या विना हल हुए रह गई, तो राष्ट्रीय एकता और परस्पर मेल-मिलाप की बातचीत आकाश-पुष्प के समान कल्पना-मात्र रहेगी। वैताल की पहेली (विकट प्रश्न) को हल करना ही होगा, नहीं तो हम मरे। जीव-विद्या के नियमानुसार सहानुभूति और निस्स्वार्थता ऐसे सामाज में कभी नहीं पनप सकती, जहाँ पर आये-दिन दुःख और पीड़ा सामने खड़ी रहती हों। ऐ भारतवासियो! देश में ऐसी घनी आबादी और निर्धनता के होते हुए सहानुभूति, प्रेम और ऐक्य के बढ़ाने की आशा करना केवल निराशा-मात्र है। भौतिक शास्त्र के विद्यार्थी इस बात को जानते हैं कि किसी प्रकार का भी भौतिक पिंड अपनी भीतरी समता उसी समय तक स्थिर रख सकता है जब तक कि उसके परमाणु, जिनसे वह युक्त है, एक-दूसरे से समान दूरी पर रहते हैं, ताकि प्रत्येक परमाणु को नियमबद्ध गति करने के लिये पर्याप्त स्थान मिलता रहे। अब भारतवर्ष की जनता की दशा देखिए। क्या उसका प्रत्येक परमाणु अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति विना औरों से टकराये हुए तालबद्ध गति कर सकता है? क्या उनको स्वतन्त्रता

के साथ स्वाभाविक गति के अनुसार चलने के लिये पर्याप्त स्थान मिलता है? यदि एक के खाने से दस आदमियों को भूखा रहना पड़ जाता है, तो राष्ट्रीय समता को सुरक्षित रखने के लिये तुम्हें बहुत शीघ्र उपाय करना चाहिए। नहीं तो भारतवर्ष को अंत में निरंकुश प्रकृति के उस भयानक परिणाम को भुगतना होगा, जिसकी व्याख्या हमारे ऐसे असाध्य रोगियों के लिये महर्षि वशिष्ठजी ने इस प्रकार की है, अर्थात् महामारी, दुर्भिक्ष, नर-संहारी संग्राम, और भूकम्प।

सुधार के उपाय

बस, बुराइयों का अब बहुत वर्णन हो चुका। इसकी ओषधि क्या है? यह कई प्रकार की है—

(१) इस अन्धविश्वास को कि "भारतवर्ष से बाहर पैर रखना अपने-आपको स्वर्ग से वंचित करना है" सदैव के लिये इस भूमि से निकाल देना चाहिए। और तब जिन भारतवासियों का यहाँ पर निर्वाह नहीं हो सकता, उनको चाहिए कि इस भूमि को छोड़कर बाहर जा बसें। कुँए के मेढक बनने में क्या आनन्द मिलता है? क्या तुमको यह बात नहीं सूझती कि तुम स्वयं इस सर्वोपम भारतवर्ष को अपने लिये एक गलाघोंटू काल-कोठरी बना रहे हो।

(२) एक समय था जब भारतवर्ष में आर्यों के लिये बहुत-सी संतान का उत्पन्न करना आनन्ददायक समझा जाता था। किन्तु अब वह समय नहीं रहा, सब उलट-पुलट हो गया है। आजकल बढ़ी हुई आबादी के कारण बहुत बड़े कुटुम्ब का होना जी का जंजाल माना जाता है। वह विचारहीन पुरुष जो अभी तक बच्चों के-से विचारों से चिपटा हुआ है, कि "मेरी संतान पर ही स्वर्ग की प्राप्ति निर्भर है", उसे ज़रा आँख खोलकर

देखना चाहिए कि वह मरने से पहले ही भारतवर्ष में अपना घर बहु-सन्तान के कारण नरक बना रहा है। अर्जुन को भी ठीक यही भ्रम था कि पुत्रों के द्वारा ही स्वर्ग मिलता है; किंतु श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में ४२ से ४५ श्लोक* तक उन लोगों को फटकार बताई है, जो विलास-पूर्ण स्वर्ग के लिये मारे-मारे फिर रहे हैं। इन श्लोकों को ध्यान देकर पढ़िए और उस स्वतंत्रता के भाव को, जो इनसे प्रकट हो रहा है, ग्रहण कीजिए। आओ, इस हानिकारक प्रथा (अर्थात् विवाह करके संतति उत्पन्न करना और अज्ञानता में जीवन बिताकर बंधन में मर जाना) को, जो हम पर बहु-काल से शासन करती चली आती है, देश से बाहर निकाल दें।

हम कभी मुसलमानी शासन-काल को अपने पतन का कारण समझकर उसे कोसने लगते हैं, कभी ब्रिटिश-साम्राज्य में दोष निकालने लगते हैं, कभी भारतवर्ष के धर्मों को इस दुर्दशा का उत्तरदायी ठहराते हैं, और कभी शिक्षा-परिपाटी को बदनाम करने लगते हैं। सम्भव है, इस तरह के छिद्रान्वेषण में हम किसी सीमा तक ठीक हों किन्तु वास्तविक लांछन तो उस अपवित्रता के

---

*यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः;
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्;
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्;
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन;
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।

(गी० २. ४२-४५)

शिर आता है जो संसार में सब से पवित्र सम्बन्ध को, जो विवाह है, अपवित्र कर देती है, और यह वही सम्बन्ध है जिससे हम सब भारतवासी उत्पन्न हुए हैं, और जिसने हमको ऐसा बना रक्खा है, जैसे हम आज हैं। इस अत्यन्त आवश्यक और अति पवित्र प्रथा की ओर अत्यन्त बेपरवाही, अत्यन्त निर्लज्जता और अत्यन्त मूर्खता-पूर्ण विधि से ध्यान दिया जाता है। जन्म-पत्रों का मिलान, ज्योतिष-शास्त्र की गिनती, शुभ शकुनों की पहचान, मन्त्रों के गान और असीम पवित्र रीति के होते हुए भी भारतवर्ष में विवाह, बुरे समय, अशुभ शकुन से और अपवित्र होते हैं। कोई भी नक्षत्र ऐसे अशुभ घरों में नहीं ठहर सकते, जहाँ वे देख रहे हों कि अल्पायु बच्चों के विवाह नक्षत्रों के लग्न और मुहूर्त के नाम से हो रहे हैं। इस दृश्य को, जो मनुष्यत्व से विपरीत बल्कि पशुत्व से भी नीचे है, देखकर वे भय के मारे काँपने लगते हैं। ऐसे पति-पत्नी के अपवित्र विवाह को, जो अपने निर्वाह का प्रबंध तक स्वयं नहीं कर सकते, पवित्र करने में पवित्र वेद की ऋचाएँ भी अपना प्रभाव खो देती हैं और उसी समय से वे सदैव के लिये प्रभाव-शून्य हो जाती हैं। देश में अयोग्य, कर्तव्य-हीन, निकम्मे और मुफ़्तख़ोरों के उत्पन्न करने के लिये निर्धनों के विवाह करनेवाली प्रथा की दूषित दुर्गन्ध के सम्मुख किन पुष्पों में ऐसी सामर्थ्य है जो अपनी सुगंध स्थिर रख सकें।"

नवयुवको! इस प्रथा को रोको, रोको। ऐ नवयुवको! तुम जो भारतवर्ष के भविष्य के उत्तरदायी हो, इसको रोको। रोको। सदाचार के नाम पर, भारत-माता के नाम पर, अपने लिये और अपनी संतान के लिये कृपा करके इन विचार-हीन, कुसमय और अंधाधुंध विवाहों को, जो देश में हो रहे हैं, रोको, रोको।

ऐसा करना लोगों को पवित्र कर देगा, और आबादीवाली समस्या को भी किंचित् हल कर देगा।

मान लो कि ये प्रस्ताव प्रकृति-नियम के विरुद्ध हैं। फिर भी तुम्हें प्राण-नाशक दुर्भिक्ष और सिसक-सिसककर मारनेवाली मृत्यु के कोड़े खाकर इन आदेशों पर चलना पड़ेगा। इसमें अत्युक्ति नहीं। इन शब्दों में तो कठोर घटनाएँ और दारुण वास्तविक तथ्य छिपे हुए हैं। सारे संसार के किसी भी सभ्य समाज से पूछ देखो—क्या बाल-विवाह और अक्षतयोनि-विधवाओं की दुर्दशा संसार में प्रकृति-नियम के घोर विरुद्ध नहीं है? क्या तुममें मनुष्यत्व का कोई परमाणु शेष रह गया है? तब इन अमानुषिक और अप्राकृतिक रीति-रवाज के रोके विना भला तुम्हें कैसे चैन आ सकता है? बाल-विधवाओं के सुकोमल बाहु सहायता के लिये अज्ञाततः फैले हुए हैं। तुम्हारी आँखों के सामने तुम्हारी अग्निवत् रीति-रवाज की चिता पर ये जीती-जागती सतियाँ जल रही हैं, और इनकी निर्दोष रोती हुई आँखों द्वारा साक्षात् भगवती तुम्हारी ओर सहायता के लिये देख रही है। कब तक तुम रोती-चिल्लाती भवानी से मुख मोड़े रक्खोगे? यदि तुम कान में कड़ुआ तेल डालकर बैठ जाओगे, अर्थात् उनके रोने-चिल्लाने को कुछ काल तक न सुनोगे, तो वह भवानी भयानक रक्त की प्यासी और बदला लेनेवाली चुड़ैल बन जायगी। उसकी इस दशा को देखकर धरती भी काँप उठती है। लोग शांति-शांति पुकारते हैं, किंतु जब तक यह स्वयं बुलाई हुई चुड़ैल तुम्हारे देश में मौजूद है, तब तक तुम शांति कैसे पा सकते हो? क्या तुम इस बात के लिये रुके हो कि ज़रा इस बात को सोच-विचार लें और इस समस्या के विषय में सत्-शास्त्रों को देख-भाल लें कि वे क्या कहते हैं?

शोक ! यह तो बिलकुल स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है, रुको मत। भगवान् शंकर का उपदेश (जो गीता-भाष्य के अध्याय १८, श्लोक ६६ में है) सदैव स्मरण रक्खो कि पवित्र ग्रन्थ और श्रुति उन्हीं बातों के लिये प्रमाण मानी जाती है, जिनको ज्ञान के सामान्य प्रमाणों (जैसे प्रत्यक्ष) से हम नहीं जान सकते। वह उद्भट भाष्यकार इस प्रकार कहता है कि "श्रुति केवल उसी बात के जानने के लिये प्रमाण है, जो मनुष्य के ज्ञान से परे है।" आगे चलकर आचार्यजी महाराज इस प्रकार व्याख्या करते हैं— "चाहे सैकड़ों श्रुतियाँ कहा करें कि अग्नि शीतल और अंधकार-मय होती है, किन्तु इस बात में वे प्रमाण नहीं हो सकतीं।"

योरप में जितने ही नीची श्रेणी के लोग होते हैं, उतने ही शीघ्र उनके यहाँ विवाह होते हैं। किन्तु इसमें संशय नहीं कि जितनी शीघ्र हिंदुस्तानियों का विवाह होता है, उतनी शीघ्र किसी नीच-से-नीच जाति का भी वहाँ विवाह नहीं होता। ऊँची जातियाँ ३० वर्ष से पहले बहुत ही कम शादी-विवाह करती हैं। उनका यह ख्याल है कि बच्चे कम हों, किन्तु योग्य हों।

हर्बर्ट स्पेंसर अपने 'जीवन-शास्त्र के सिद्धांत' में इस बात को दिखलाता है कि ज्यों-ज्यों मानसिक उन्नति अधिक होती जाती है, त्यों-त्यों सन्तानोत्पादक शक्ति कम होती जाती है। सन्तानोत्पादक शक्ति को ही, जो प्रायः समस्त प्राणियों में रहा करती है, अपना लक्ष्य बनाकर हम अपने आपको कब तक इतना नीचा बनाये रक्खेंगे ? हमारे शास्त्रों के अनुसार, जो ब्रह्मचर्य का गुण वर्णन करने में कभी उकताते नहीं, कोई भी शक्ति, चाहे शारीरिक हो या आत्मिक, पवित्रता के बिना नहीं हो सकती। मानवी पौरुष का वह भाग जिसको मैथुन-क्रियाओं और मैथुन-विचारों में काम-शक्ति कहते हैं, यदि

रोका जाय और वश में लाया जाय, तो वह सहज में ओजस् और अक्षय आत्मिक बल में बदल जाता है। इसलिये ऐ देवताओं के साथ मिलकर युद्ध करनेवाली जाति की सन्तान! तुझे काम-वासनाओं को अपने वश में करना चाहिए। वह मूर्ख, जिसने इस पाशविक काम पर अधिकार नहीं पाया और प्रकृति के महान् सम्बन्ध अर्थात् स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को खेल-तमाशा समझ रक्खा है, उसे नहीं मालूम कि वह सच-मुच अपना ही रक्त, अपना ही स्वेत रक्त, जो उसकी जान है, बहा रहा है। समस्त पापों की जड़ इसी दैवी शक्ति का अनुचित प्रयोग है, जैसे कुपात्र के पास धन-सम्पत्ति (अर्थात् अनुचित स्थान पर द्रव्य) कूड़ा-कर्कट ही है। काम-वासना को जो पशु-वृत्ति का विशेषण दिया जाता है, उससे भी उसका नीचत्व स्पष्ट होता है। पशु निस्सन्देह अधम और मूर्ख हैं, क्योंकि अंधाधुन्ध सन्तति बढ़ाते चले जाते हैं, और उस धड़ा-धड़ सन्तान उत्पन्न करने का परिणाम भयानक युद्ध है, जिससे कलंक का टीका उनके शिर लगता है। फिर भी पशु इसलिये बिलकुल पाप-रहित हैं कि वे विषय-सुख के लिये इस क्रिया को नहीं करते। मनुष्य तो पशुओं से श्रेष्ठ इसलिये माना जाता है कि उसकी वासनाएँ उसकी बुद्धि के वश में होती हैं। अब जो मनुष्य सन्तान के अंधाधुन्ध उत्पन्न करने में पशुओं की बराबरी करता है, और अनावश्यक तथा अपवित्र विषय-सुख में लिप्त होने से पशुओं से भी अधमतर हो जाता है, कौन-सी नीचता और अधःपतन ऐसा है जो उस पर न आये?

पवित्रता, पवित्रता, पवित्रता तो तुम्हें खाँडे की धार पर प्राप्त करनी होगी। यदि तुम पवित्रता को प्राप्त न करोगे, तो विकासवाद का निर्दयी पहिया तुम्हें कुचल डालेगा, और समूल

नाश कर देगा। आज के दिन तुम्हारी एक-मात्र आशा पवित्रता ही रह गई है। जिस प्रकार वनचरों के बीच विकासवाद की रीति ने निकट-सम्बन्धियों में पवित्रता का व्यवहार बलपूर्वक पैदा कर दिया है, उसी तरह, ऐ भारत के रहनेवालो! आजकल की स्थिति इस बात की बड़े वेग से इच्छुक है कि तुम्हारे विचार पवित्र हों, तुम्हारा चरित्र पवित्र हो। ऐ भारतवासियो! यदि तुममें इसकी कमी रही, तो तुम बच नहीं सकते। चाहे यह कठिन हो या सहज, तुम्हें तो यह प्राप्त करना ही पड़ेगा। भारतवर्ष के लिये, अपने शरीरों के लिये, अपनी बुद्धि के लिये, अपने धर्म के लिये, इस लोक के लिये, और परलोक के लिये, ऐ भारत-निवासियो! तुम्हें तो पूर्ण पवित्र होना ही पड़ेगा। विना पवित्रता के वीरता नहीं, विना पवित्रता के प्रीति नहीं, विना पवित्रता के साहस नहीं, विना पवित्रता के एकता नहीं, और, विना पवित्रता के शान्ति नहीं।

शुद्धि विना नहिं वीरता, नहिं साहस नहिं मेल ;
विन पवित्रता प्रीति नहिं, औ नहिं शांति अमेल।

(३) शिक्षा—अमेरिका और इँगलैंड के अपढ़ लोग भी हमारे यहाँ के विश्वविद्यालयों के सामान्य अंडर-ग्रेजुएटों से अधिक चतुर होते हैं। यह कैसे? उनकी शिक्षा का मुख्य साधन दैनिक सस्ते समाचार-पत्र होते हैं। इँगलैंड, जापान और अमेरिका में कॉलेजों से बढ़कर समाचार-पत्र विद्या का प्रचार करते हैं। सरकार और अन्य संस्थाओं को हम इसीलिये धन्यवाद देते हैं कि वे हमारे देश में किसी सीमा तक शिक्षा फैलाते हैं; किन्तु यह वास्तव में कुछ भी नहीं है। सर्व-साधारण की मूर्खता और स्त्रियों की अंधकारमयी भयानक अवस्था का दोष सिवा हमारे और किसी पर नहीं लग सकता। वह जीवित शक्ति को जो

निकृष्ट कर्मों अथवा अकर्मों में व्यर्थ नष्ट हो रही है, स्त्रियों की दशा के सुधार में, सर्व-साधारण को मूर्खता से निकालने अर्थात् पढ़ाने में, और अपने आप तथा जाति को उठाने में लगा दो। इस उद्देश की पूर्ति में सबसे पहला और सीधा-सादा मार्ग, जो ग्रहण करना पड़ेगा, देशी समाचार-पत्रों की दशा का सुधारना है। ऐसे समाचार-पत्र निकालो जो सचमुच लाभदायक हों, और उन समाचार-पत्रों को, जो स्त्रियों तथा सर्व-साधारण की समझ में आने-योग्य भाषाओं में पहले से मौजूद हैं, उन्नति प्रदान करो। इस ओर पहले भी कुछ प्रयत्न किया गया था, किन्तु असफलता हुई, क्योंकि उच्च कोटि का शिक्षित विद्यार्थी-वर्ग प्रायः देशी भाषा में लिखे वा छपे हुए ग्रन्थावलोकन से घृणा करता है। तुम्हें अपनी मातृ-भाषा का सम्मान करना सीखना चाहिए।

यंगमेन्स इंडियन ऐसोसिएशन को चाहिए कि सीधी-सादी हिंदी भाषा में, बल्कि हिन्दी-अक्षरों से पंजाबी भाषा में, एक पत्र निकाले और जहाँ तक हो सके, फ़ारसी और संस्कृत के शब्दों को उसमें न आने दे। और उस विषय पर लेख लिखने का शौक़ न करो जिसका तुम्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। स्वाभाविक होओ। जैसा ख्याल करते हो, वैसा लिखो। किसी की नक़ल मत करो। कॉलेज के विद्यार्थी भी उस पत्र में छोटे-छोटे लेख दिया करें। उन चुभते हुए भावों और प्रकाश देनेवाले विचारों को, जो तुम्हारे पढ़ते समय उत्पन्न हों, अपनी मातृ-भाषा में कभी-कभी प्रकट करने से तुमको पढ़नेवालों की अपेक्षा अधिक लाभ होगा, यद्यपि दूसरे ऐसा समझेंगे कि तुम्हारा लेख तुम्हारी अपेक्षा पाठकों को अधिक लाभ देता है। इस काम के लिये किसी बड़े लम्बे-चौड़े विचार

से तुम्हें अपने को थकाने वा तङ्ग करने की आवश्यकता नहीं है। इस पत्र के पहले अंक में हिन्दी की वर्णमाला और वर्णों की सरल मिलावट से घरेलू शब्द होने चाहिए, और कॉलेज के भाग्यमान् विद्यार्थियों को, जो देश में ज्ञान और शिक्षा फैलाने के लिये मार्ग-दर्शक हैं, चाहिए कि इस आदरणीय कर्तव्य को अपने ज़िम्मे लें, अर्थात् अपनी बहनों, माताओं, स्त्रियों, लड़कियों और अन्य सम्बन्धवाली स्त्रियों को, जो लिख-पढ़ नहीं सकतीं, लिखना-पढ़ना सिखलाएँ। सार्वजनिक पाठशालाओं अर्थात् सरकारी मदरसों की प्रतीक्षा में बैठे न रहो। यह आदरणीय ज़िम्मेदारी तुम्हारे ही ऊपर है।

यदि भारतवर्ष को जीवित रहना है, तो स्त्री-शिक्षा का अत्यन्त विस्तार के साथ प्रचार करना पड़ेगा। तब फिर तुम्हारे ही हाथों से यह काम क्यों न आरम्भ हो। इस बात को देखो कि अपने प्रान्त में कोई स्त्री या ग़रीब मनुष्य अपढ़ न रहने पावे। देश के मत्थे से इस कलंक के टीके को मिटा दो। क्या तुमको अपने पड़ोस की भंगिन को पढ़ाते हुए भय वा लज्जा मालूम होती है? यदि ऐसा है, तो तुम्हारी सभ्यता और सदाचार पर धिक्कार! ग़रीब और अपढ़ लोगों के पास मातृवत् सहानुभूति और प्रेम के साथ पढ़ाने के लिये जाओ। यह कैसा देवताओं का-सा काम है। यंगमेन्स इंडियन ऐसोसिएशन के पत्र में आरंभिक भौतिक शास्त्र (Physics), शारीरिक शास्त्र (Physiology), ज्योतिष-शास्त्र (Astronomy), इतिहास (History), अर्थशास्त्र (Political economy), मानस-शास्त्र (Psychology), इत्यादि एक अत्यन्त मनोरंजक और सरल रीति में, जैसे तुम लिख सकते हो, धीरे-धीरे स्थान पावें, और फिर धीरे-धीरे भाषा की शैली भी अधिक

श्रेष्ठ बनाई जाय। राम इस पत्र के लिये हिन्दी-अक्षरों की सिफ़ारिश करता है; क्योंकि बहुत शीघ्र हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा हुआ चाहती है। स्त्रियों और ग़रीबों को शिक्षा देना हमारे लिये बड़े महत्त्व का काम है, और यह वह काम है कि यदि पूर्ण रीति से किया गया, तो हमको अंततः उन्नति के शिखर तक अवश्य पहुँचा देगा। मगर भूलना मत। तुम्हारे लिये एक और काम है जो इससे भी अधिक सीधा-सादा और अत्यन्त आवश्यक है। वह यह है कि समुन्नत देशों में जाकर कृषि-विद्या, कला-कौशल तथा व्यापार को सीखो और उस लाभदायक विद्या को समस्त भारत में फैला दो।

(४) भोजन—भोजन का प्रश्न भी बड़ा ही आवश्यक है। मस्तिष्क और शरीर की शक्तियाँ उसी समय पूरा-पूरा विकास पा सकती हैं जब खान-पान के प्रश्न पर उचित ध्यान दिया जाय।

जैसा खावे अन्न, तैसा होवे मन ;
जैसा पीवे पानी, वैसी होवे वाणी।

यदि तुम्हें अपनी शक्ति के मुख्य कारण अर्थात् भोजन का पूरा ज्ञान प्राप्त हो, तो समस्त अनुचित थकावट दूर और शक्ति की कमी भरपूर हो सकती है। क्या खाना चाहिए? और कैसे खाना चाहिए? इस विद्या को विज्ञान की दृष्टि से आप जानिए। और फिर स्त्रियों को, जो हमको खिलाती हैं, खान-पान का तत्त्व-ज्ञान आप बतलाइए। यह बड़े शोक की बात है कि भारतवर्ष के शिक्षित पुरुषों ने अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण खान-पान का प्रश्न विना हल किये ही छोड़ दिया, और यह और भी लज्जा की बात है कि विज्ञानविद् लोग भी भोजन के साथ कभी-कभी ओषधियों और अलकोहल

आदि का प्रयोग करते हैं; और इससे कुछ अधिक नहीं जानते।

(५) धर्म—क्या इस पत्र ने तुम्हारे धैर्य को थका दिया, और क्या तुम उकता गए ? चाहे उकता गए हो या नहीं, ठहरो; जब तक वह एक बात, जो राम जानता है, तुमसे कह न ले, तुम्हें कहीं जाने न देगा। ऐ शादी के मेहमानो ! क्या तुम्हें कहीं बड़े आवश्यक काम पर जाना है ? अस्तु, किन्तु यह पुराना मल्लाह तुम्हें उस समय तक न छोड़ेगा जब तक कि वह एक बात, जिस के कहने के लिये यह जन्मा है, तुमसे कह न ले। राम का सन्देशा सुनने से बढ़कर आवश्यक कोई और काम हो नहीं सकता।

घरेलू, सामाजिक या राष्ट्रीय कर्तव्य तुम्हारे कर्मकाण्ड हैं, और कोई भी शुभ कर्म अँधेरे में नहीं किया जा सकता। हाँ, अंधेरखाते ही अँधेरे में हो सकते हैं। (Deeds of darkness are committed in the dark)। जब तक तुम्हारे हृदय में विश्वास की ज्योति बराबर जागती न रहेगी, और प्रज्वलित ज्ञान का मशाल चेतन न रहेगा, तब तक तुम कुछ नहीं कर सकते, एक पग आगे नहीं बढ़ सकते। ये समस्त आज्ञाएँ और सविस्तर सूचनाएँ, जो प्रति दिन तुम्हारे कानों में फूँकी जाती हैं, आपके जीवनों का शरीर हैं। किन्तु विना जीवन के कोई शरीर कदापि ठहर नहीं सकता। समस्त सफल आन्दोलनों का प्राण एक जीता-जागता विश्वास और प्रज्वलित ज्ञान है। बड़े-बड़े नामी देहात्मवादी (Materialist), स्याद्वादी (Scepticist), प्रत्यक्षवादी (Positivist), अनीश्वरवादी (Etheist), और अज्ञेयवादी (Agnostic) लोगों तक की भी सफलता इसी धर्म की स्फूर्ति के कारण, जो उनमें मौजूद थी, दृष्टिगोचर हुई है, यद्यपि उनको इसका ज्ञान न था। कुछ अवसरों पर धर्म के

प्रचारकों की अपेक्षा इन लोगों ने धर्म अधिक बरता है। एक रबड़ का कारखाना ले लो। यह रबड़ का कारखाना हज़ारों-लाखों बेकारों की जीविका चलाता है। ये लोग राष्ट्रीय व्यवसाय को चलाकर देश में रुपया इकट्ठा करते हैं, ग़रीब तथा मिहनती लोगों का ढाढ़स बँधाते हैं और जहाज़ी कम्पनियों, रेल के नौकरों, डाक आदि के लिये बहुत-सा काम निकालते हैं। तो भी यह सब ठाठ-बाट कैसे हो सकता, यदि एक-एक रसायन-समीकरण और भीतरी प्रतिक्रिया से इसे गुरुत्व वा महत्त्व न मिलता। अतः जब तक कि भीतरी प्रतिक्रिया, हृदय में परिवर्तन, मानसिक शुद्धि, आत्मिक समीकरण अथवा तुम्हारी आत्मा में परमात्मा के प्रकाश से प्रसाद और महिमा प्राप्त न हो; तुम्हारा कोई काम, चाहे निज का हो, चाहे घरेलू, चाहे सामाजिक हो, चाहे राजनैतिक हो, स्वतंत्रता के साथ चल नहीं सकता। कारलाइल लिखता है कि "विश्वास एक बड़ी प्राणदा वस्तु है।" प्रत्येक जाति का इतिहास अपने ही विश्वास के अनुसार फलदायक, आत्म-विकासी और उत्तम होता है। अरबवालों में एक व्यक्ति हज़रत मोहम्मद ने देखो एक शताब्दी में क्या-क्या कर दिखाया, मानो एक लुप्त-नाम मरुस्थल पर एक चिनगारी आ पड़ी और उससे बालू के ज़र्रे बारूद के छर्रे बन गए, और दिल्ली से ग्रीनाडा तक आकाश को उड़ा धुवाँधार कर दिया। "अल्लाहो अक्बर" अर्थात् "सिवा ईश्वर के और कुछ महान् नहीं है।"

जो कुछ सचमुच महान् है, वह हमारे भीतर की अकथनीय गहराई से उछलता है। जो कोई पूर्ण रीति से ब्रह्म-विचार में नहीं रहता तथा आंशिक रूप से इस विचार में रहकर पूर्ण-रूप से एक-ब्रह्म में रहने का प्रयत्न नहीं करता, वह चाहे जहाँ रहे

और चाहे जिस प्रकार के आडम्बर में रहे, काल के मुख में है ; वह जीवित नहीं, बरन् मृतक है।

हरबर्ट स्पेंसर तक अपने उस अंतिम ग्रन्थ में, जिसे उस मरते हुए राजहंस का गीत कह सकते हैं, हक्सले के उस अनुभव का, जो उसने एक बड़े मस्तिष्कवाले कछुए पर किया था, हवाला देते हुए यों कहता है कि "हमारी विचार-चेतना (thought consciousness) का शरीर हमारी अनुभूति (feeling) से बना है, यद्यपि उसके बाह्य-रूप से केवल वही शक्ति दिखलाई पड़ती है जिसको हम बुद्धि (intelligence) कहते हैं। जिस अनुभूति को हम मन की व्याख्या करते समय प्रायः उड़ा देते हैं, वह उसका आवश्यक अंग है। यही अनुभूतियाँ रानी हैं और बुद्धि दासी है।" इस अनुभव करनेवाली शक्ति को साधारण लोग 'हृदय' कहते हैं, जो विश्वास और धर्म का स्थान है। यही शक्ति कार्य के लिये उभारती वा उत्साहित करती है, और कार्य को पूर्ण करने के लिये बल देती है। स्पेंसर साहब फिर यों कहते हैं कि "दासी (मस्तिष्क वा बुद्धि) को उन्नति देने और रानी (हृदय या अनुभूति) को यों ही पड़ा रहने देने से कुछ काम नहीं निकलेगा।" ओहो ! किस सौंदर्य के साथ इस सुप्रसिद्ध अज्ञेयवादी का निकाला हुआ परिणाम आज-कल के अत्यन्त सुयोग्य मानसिक-शास्त्र (Psychology) के ज्ञाता आचार्य जेम्स महोदय के इस वर्णन से मेल खाता है कि "धार्मिक अनुभव ऐसे ही विश्वास दिलानेवाले होते हैं जैसे कोई सीधे इन्द्रिय-जन्य प्रत्यक्ष अनुभव होते हैं ; बल्कि प्रायः ये अनुभव उन सिद्धान्तों से भी, जो तर्क-शास्त्र के तर्कों से सिद्ध हों, कहीं अधिक निश्चय करानेवाले होते हैं।" इस मौखिक वार्तालाप की तह के नीचे अपनी प्रकृति के गहरे तल पर रहना, अपने

अस्तित्व की गहराई को नापना, उसका प्रत्यक्ष अनुभव करना और अपने भीतरी तत्त्व को, जो वस्तुतः प्रकृति का भी तत्त्व है, अनुभव करके आप ही वह तत्त्व बन जाना बल्कि "तत्त्वमसि" का एक जीती-जागती मूर्ति बनना है—

हाँ, यह है ज़िन्दगानी, और ये नहीं है फ़ानी ;
खम्भों को फाड़ती है ; ताक़त की है निशानी।
१—दुनिया हट जाती है, रस्ता मुझे देने के लिये ;
हूँ मैं तेजस्वी प्रकाश तिमिर दूर भगे।
२—हो ख़बरदार पहाड़ो ! मेरे रस्ते से हटो ;
वरना डालूँगा कुचल, हाड़ और पंजर सारे।
३—ऐ सलातीनो सरदार, तुम सब हो खिलौने मेरे ;
लाइन क्लीअर करो, इस नूरे-मुजस्सिम के लिये।
४—तोप गर्जन से बस अब जाके ढिंढोरा पीटो ;
भाग्य और देवता सब रथ से हैं मेरे बँधे।
५—माया ! हट दूर परे, अब तो मैं जाग उठा हूँ ;
जाग जाग और हो आज़ाद, ऐ 'प्रकाश' मिरे।

ज्ञान जिसका एक अंग अनंत शक्ति है, उसी का दूसरा अंग अनंत शांति है—

(१)

हरि ॐ शांति ॐ शमदम, ॐ ॐ शिव शिव बम् बम् बम्।
अमृत बरसे है हरदम, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम्॥
छाई घटा है कैसी काली, चाल है जिसकी क्या मतवाली।
अमृत बरसे है झम झम, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम्॥
बादे-बहारी साँस हमारी, लाज़ ऑफ नेचर से है जारी।
चलती है सोऽहं सोऽहं, रिमझिम रिमझिम झम् झम् झम्॥

शाख़ों से है कुछ तो झूमें, शबनम से कुछ धरती चूमें।
गिरती हैं क़ौमें धम-धम, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम् ॥
नूर है मेरा कैसा आला, स्वेत या क्षीर समुन्दर वाला।
चमके है कैसा चम-चम, रिमझिम रिमझिम झम् झम् झम् ॥
कैसी लहरें मारे है, दुनिया जिससे पसारे है।
ले रहा लहरें है थम-थम, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम् ॥
ॐ नूर का है भंडार, तारे हैं जिसकी बौछार।
गया प्रकाश अब राम में रम, रिमझिम रिमझिम छम् छम् छम् ॥

(२)

फैली है सुबह शादी क्या चैन की घड़ी है।
सुख के छुटे फुवार क्या नूर की झड़ी है। झिम झिम झिम ॥
ठंडक भरी है दिल में आनंद बह रहा है।
अमृत बरस रहा है, झिम झिम झिम ॥
शबनम के दल ने चाहा पामाल कर दे गुल को।
सब फ़िक्र मिल के आये कि निहाल कर दो दिल को ॥
आया सबा का झोंका वो ज़ियाए* नूर दहका।
झड़ती है शबनमे-ग़म झिम झिम झिम ॥

---

* प्रकाश

भारत की महिलाएँ

राम अब एक व्याख्यान का कुछ भाग पढ़ेगा, जो लंदन में एक अँगरेज़ महिला ने दिया था और जो भारत के एक पत्र में छपा था। राम यह व्याख्यान आप लोगों को यह बताने के लिये पढ़ता है कि इस देश में भारतीय जीवन-व्यवहार और कुटुम्ब-व्यवस्था के संबंध में कैसे ग़लत और झूठे विचार फैले हुए हैं। कुछ लोगों का यह विचार है कि जो लोग भारतवर्ष में जाते हैं, कुछ भी कार्य न कर सकेंगे। उनका यह अनुमान है कि वहाँ जाति-भेद ने ऐसा प्रबल अधिकार जमा रक्खा है कि उनके साथ कोई भी अमेरिका-निवासी नहीं मिल सकता। ऐसे कुछ विचार उन मनुष्यों द्वारा फैले हुए हैं, जिनका भारत-वासियों से कभी भी संबंध नहीं रहा है।

जिससे हम प्रेम करते हैं, उसके लिये जीवन समर्पण करना कितने बड़े सौभाग्य की बात है। अहा! कितने परम आनन्द की बात है।

प्रेम केवल वही कर सकता है, जो अपने प्रेम-पात्र के लिये प्राण अर्पण करने को निरन्तर प्रसन्न-चित्त होकर तैयार रहता है। ऐसा प्रेम ही मनुष्य को जीवित रखता है और उस से महान् सेवा करा लेता है। ऐसे प्रेम की ही भारतवर्ष को आवश्यकता है। भारतवर्ष में कार्य करने के लिये जानेवाले अमेरिकन स्त्री-पुरुषों को ऐसा ही प्रेम रखना चाहिए।

बहुत से झूठे समाचार उन मनुष्यों द्वारा फैलाये गये हैं

जो भारत में रहते हैं। परंतु भारतीय जीवन से अनभिज्ञ हैं। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे तुम एक पुस्तक को मोमजामें में लपेटकर पानी में डुबो देते हो, परंतु पुस्तक के चारों ओर पानी होते हुए भी वह नहीं भीगती। इसी प्रकार ऐसे मनुष्य भारत में रहते हुए भी भारत-वासियों से नहीं मिलते और न उनसे एक होते हैं। इस ही बात की एक स्त्री, जो भारत में भारतीय रीति से रही है, साक्षी दे रही है। राम चाहता है कि इसी स्त्री के सदृश अमेरिका-वासी भारतीयों से मिलें। यदि तुम सच्चे कार्य-कर्ता बनकर जाओगे, तो तुम्हें अपनी जेब से एक पाई भी खर्च न करना पड़ेगी। वहाँ लोग लाखों मनुष्यों का पालन-पोषण कर रहे हैं। वहाँ के लोग निर्धन होते हुए भी अत्यंत उदार हैं।

राम ने भारतवर्ष के साधुओं के पास कभी धन नहीं देखा। जब वे गलियों में जाते हैं, तब सर्वदा यही समझा जाता है कि वे अपनी क्षुधा-निवृत्ति के लिये कुछ भिक्षा माँग रहे हैं। प्रत्येक भारत-रमणी यह अपना ईश्वर दत्त कर्तव्य समझती है कि भूखों को भोजन दे और उन मोहताजों की आवश्यकताओं को जो उसके घर के सामने से निकलते हैं, पूरा करे। यदि कोई साधु एक ऐसी स्त्री के घर के सामने से निकले जिसके पास भूखे की भूख मिटाने के लिये कुछ भी नहीं है, तो ऐसी अवस्था में उसके दिल पर क्या गुजरती है, यह राम ही जानता है। निर्धन साधु को देने के लिये जब उसके पास अन्न न होगा, तब उसके नेत्रों से करुणा-जनक अश्रु-प्रवाह बह निकलेगा। दरिद्र या भूखे मनुष्य के से वस्त्र पहने हुए जो कोई व्यक्ति सड़क से निकलता है, तो वह साधु के समान समझा जाता है। साधु का अर्थ स्वामी ही नहीं है। यदि तुम भारत

में हो और भूखे हो, तो तुम्हारा आदर साधु के समान होगा। जिस किसी के पास द्रव्य अथवा वस्त्र नहीं है, वह साधु ही के समान माना जाता है।

अमेरिका और इंगलैण्ड में बहुधा कहा जाता है कि भारत में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता और पति उनके साथ उचित प्रेम नहीं करते। यह बहुत ही असत्य विचार है, क्योंकि भारत में इस देश की अपेक्षा स्त्री का अधिक सम्मान और प्रेम होता है। इस देश में सर्व-साधारण के समक्ष स्त्री के साथ प्रेम होता है, चुम्बन होता है, लाड़-प्यार होता है, परन्तु घर में जाते ही उसका अनादर होता है। भारत में सर्व साधारण के समक्ष पति स्त्री का आदर-सत्कार बहुत ही कम अथवा कुछ भी नहीं करता, परन्तु हृदय से वह उसे अत्यंत प्यार करता है।

इस देश में स्त्री का सर्व-साधारण के समक्ष व्यवहार अकेले की अपेक्षा अधिक महत्व का समझा जाता है, परन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं है। वहाँ पति सर्व-साधारण के सामने स्त्री की ओर कुछ ध्यान ही नहीं देता, परन्तु अपने-अपने स्वभाव-अनुसार स्त्री के लिये अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार रहता है। वह उसके सुख के लिये सब कुछ सह सकता है। अन्तर केवल इस बात में है कि भारत की स्त्रियाँ पुरुष के समान शिक्षिता नहीं हैं। तथापि क्या इस देश में स्त्रियाँ उतनी ही शिक्षिता हैं, जितने कि पुरुष? भारत में न तो पुरुष ही इतने शिक्षित हैं जितने कि यहाँ हैं और न स्त्रियाँ ही।

आजकल सब दोष भारतवर्ष के विवाह-संबंध के माथे मढ़ा जा रहा है, परंतु यह ठीक नहीं। इस प्रश्न का यह यथार्थ निराकरण नहीं है।

भारत में पुरुष अपनी पत्नी को 'मेरी स्त्री' कहने की धृष्टता

नहीं कर सकता। वह अपनी पत्नी के संबंध में कुछ कहता हो, तब 'मेरी स्त्री' कहकर बात नहीं करता। इस प्रकार के शब्द वहाँ अश्लील, असभ्य और निर्लज्ज समझे जाते हैं। भारत में पुरुष इन शब्दों का कभी प्रयोग नहीं करता। जब वह अपनी स्त्री से या उसके संबंध में कुछ कहता है, तो उसे अपने 'लड़के की माँ' ऐसे पर्याय नाम से पुकारता है, जैसे "कृष्ण की माँ, राम की माँ" इत्यादि।

भारतवर्ष में यह क़ानून है कि प्लेग के रोगी के पास किसी घर के आदमी को जाने की आज्ञा नहीं दी जाती। एक प्लेग की झोपड़ी में एक प्लेग का बीमार लड़का था। इस बालक को अस्पताल में ले गये थे। उस झोपड़ी में जहाँ वह प्लेग का रोगी लड़का था, एक भद्र महिला गयी और किसी प्रकार उसने उसमें प्रवेश किया। वह वहाँ धाय के बहाने रहने और उस प्लेग के बीमार लड़के की सेवा करने लगी। अंत में बालक की माँ को (जो वही महिला थी) आने की आज्ञा मिली और वह प्रिय बालक अपनी माता के चरणों पर शिर रखकर पड़े-पड़े प्राण त्याग रहा था। हिंदू-धर्म के अनुसार यह मृत्यु वैसी ही पवित्र भूमि में हो रही थी, जैसे एक ईसाई ईसा के चरणों पर अपना मस्तक रखकर मृत्यु प्राप्त करता है। जब भारत का एक बालक अपनी माता के चरणों पर शिर रखकर प्राण त्याग करता है, तब वह मृत्यु परम पवित्र मानी जाती है।

इस देश में तुम परमेश्वर को पिता के समान पूजते हो, जो "पिता स्वर्ग में है।" भारत में परमेश्वर की पिता के समान ही नहीं, किन्तु माता के समान भी पूजा होती है। भारत की भाषा में माता का शब्द सब से प्यारा शब्द है। 'माता जी' से तात्पर्य अत्यंत पवित्र तथा अत्यंत प्यारे ईश्वर से है।

जब भारतवर्ष में कोई बीमार होता है, अथवा कोई महान् दुःख उसके शिर पर आ जाता है, तब उस समय उसके मुख से 'मेरे ईश्वर' शब्द नहीं, किन्तु 'माँ, माँ,' का शब्द ही निकलता है। यह वह शब्द है, जो एक हिंदू के हृदय के तल से निकलता है। हिंदू के अन्तःकरण की पवित्र भावना 'माँ' शब्द से प्रकट होती है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

वेदांत और समाजवाद

सब से पहले "समाजवाद" नाम के संबंध में राम उसे "व्यक्तिवाद" कहना पसंद करेगा। 'समाजवाद' शब्द समाज के शासन की कल्पना को प्रमुखता देता है, किंतु राम कहता है कि सत्य का यथार्थ तत्त्व तो यह है कि एक व्यक्ति सारी दुनिया क्या बल्कि सम्पूर्ण विश्व के सामने अपनी श्रेष्ठता को प्रकट करे। तब तो न कोई गड़बड़ी रहेगी, न हैरानी, न चिंता। इसी को राम व्यक्तिवाद कहता है। लोगों की यदि इच्छा है, तो उन्हें इसे समाजवाद कहने दो। पर व्यक्ति की दृष्टि से यह वेदान्त की शिक्षा है।

पुनः हम देखते हैं कि जिसे समाजवाद कहते हैं, उसका लक्ष्य केवल पूँजीवाद को परास्त करना है, और यहाँ तक वह वेदान्त के लक्ष्य से एक है। यह लक्ष्य आपको केवल स्वामित्व के सम्पूर्ण भाव से रहित कर देना चाहता है, और सम्पत्ति, संग्रह तथा स्वार्थपूर्ण अधिकार को उड़ा देना चाहता है। यही वेदान्त है और यही समाजवाद है। दोनों का लक्ष्य एक है।

वेदान्त समता की शिक्षा देता है, और यही समाजवाद का परिणाम होना चाहिए। किसी बाहरी सम्पत्ति के लिये न सन्मान होना चाहिए, न आदर, न इज्ज़त इत्यादि। यह बात बहुत विकट और बड़ी ही कठोर-सी जान पड़ती है; किन्तु तब तक पृथ्वी पर कोई सुख नहीं हो सकता, जब तक मनुष्य सम्पत्ति, अधिकार, आसक्ति, और मोह को त्याग

नहीं देता। समाजवाद केवल यह चाहता है कि मनुष्य इन सबको त्याग दे, और वेदांत इसके साथ-साथ इस त्याग का कारण भी बतलाता है। नामधारी समाजवाद तो वस्तुओं के केवल ऊपरी तल (बाह्य-रूप) का ही अध्ययन-मात्र है, और इस परिणाम पर पहुँचता है कि मानव-जाति को समता, बंधुत्व और प्रेम के व्यवहार पर जीवन बिताना चाहिए। वेदांत इस वस्तु का अध्ययन अंतरी (वास्तविक) और स्वदेशी दृष्टिकोण से करता है। वेदांत के अनुसार किसी व्यक्तिगत सम्पत्ति को ग्रहण करना अपनी आत्मा या आंतरिक स्वरूप के विरुद्ध अत्यंत पापाचार है। वेदांत के अनुसार मनुष्य का एक-मात्र अधिकार केवल अर्पण करना है, माँगना नहीं। यदि तुम्हारे पास देने को कुछ नहीं है, तो अपनी देह कीड़ों के खाने के लिये दे दो। जो कुछ तुम अपने पास रखते हो, वह कुछ भी नहीं है, उसके लिये तुम्हें कोई भी धनी पुरुष नहीं कहता। जो कुछ तुम दे डालते हो, उससे तुम अमीर हो। हरएक को किसी वस्तु के ग्रहण करने के लिये नहीं, किंतु दे डालने के लिये काम करना चाहिये। दुनिया सबसे बड़ी भूल यह करती है कि वह लेने पर सुख का भाव आरोपित करती है। वेदांत चाहता है कि आप इस सत्य को पहचाने वा अनुभव करें कि सर्व सुख देने में है, लेने वा माँगने में नहीं। जिस क्षण तुम माँगने या भिक्षा की वृत्ति को प्रवेश करने देते हो, उसी क्षण तुम अपने आपको संकीर्ण या संकुचित कर लेते हो और जो कुछ तुम्हारे अंदर आनंद होता है, उसे तुम निचोड़ कर बाहर फेंक देते हो। जहाँ कहीं आप रहें, दाता की स्थिति में काम करें, और भिखारी की स्थिति में कदापि नहीं; ताकि आपका काम विश्वव्यापी काम हो, तनिक भी निजी न हो।

भारत के वेदांतवादी साधु आज भी यह समाजवादी जीवन हिमालय पर व्यतीत कर रहे हैं और ऐतिहासिक काल के पूर्व से ही ऐसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे बड़ी सख़्त मेहनत करते हैं, वे निठल्ले नहीं हैं, वे आरामतलब और विलासी मनुष्य नहीं हैं, क्योंकि उन्हीं के प्रयत्नों से भारत के सम्पूर्ण महान् साहित्य की उत्पत्ति हुई है। यही हैं वे लोग जो सर्वश्रेष्ठ कवि, नाटककार, पदार्थ-तत्त्ववेत्ता, दार्शनिक, वैयाकरणी, गणितज्ञ, ज्योतिर्विद्, रसायनशास्त्री, आयुर्वेदज्ञ हुए हैं, तथापि वे लोग भी यही हैं जिन्होंने द्रव्य को कभी नहीं छुआ। ये ही वे लोग हैं जिन्होंने यथासाध्य कठोरतम जीवन व्यतीत किया। इससे समाजवाद पर जो कलंक लगाया जाता है कि वह लोगों को कायर, आलसी और परावलम्बी बना देता है, मिट जाता है। केवल वही ख़ूब काम कर सकता है, जो अपने को स्वच्छन्द समझता है।

वेदान्त के और समाजवाद के भी अनुसार आपको अपने बच्चों, स्त्री, घर या किसी वस्तु पर अधिकार जमाने का कोई हक़ नहीं है।

सभ्य समाज के ललाट पर यह बड़ा कलंक का टीका है कि नारी एक वाणिज्य की वस्तु बनाई गयी है और मनुष्य उसी प्रकार उस पर अपना अधिकार जमाता और उसका मालिक बनता है, जिस प्रकार वह वृक्ष या धन-धाम का मालिक होता है। इस प्रकार सभ्य समाज में नारी को अचेतन पदार्थ की स्थिति दी गयी है, तथा नारी के हाथ-पैर बँधे रक्खे जाते हैं जब कि मनुष्य अपने मार्गों वा ढंगों में स्वतंत्र है। स्त्री अभी एक मनुष्य की सम्पत्ति है, फिर दूसरे की समाजवाद के तथा वेदान्त के अनुसार यह अति विचित्र जान पड़ता है,

किन्तु नारी को भी अपनी स्वाधीनता उसी तरह अनुभव करना चाहिए जिस तरह मनुष्य अनुभव करता है। वह उतनी ही स्वाधीन है, जितना कि मनुष्य। फिर यदि मनुष्य को कोई वस्तु अपने अधिकार में न रखना चाहिए, तो नारी को भी किसी वस्तु पर अधिकार न जमाना चाहिए। अपना आनन्द स्थिर रखने के लिये उसे भी अपने पति पर अधिकार रखने का कोई हक़ न होगा। यहाँ पर समाजवाद के विरुद्ध एक गंभीर आपत्ति उठती है। यदि समाजवाद नर और नारी को पूर्ण स्वाधीनता दे देता है, तो वह समाज को पशुता की अवस्था में ले आवेगा और लम्पटों, दुराचारियों की दुनिया बना देगा। राम कहता है कि नर और नारी के लिये स्त्री-पुरुष के संबंध के दृष्टि-बिन्दु से इससे बेहतर कुछ नहीं हो सकता। गाय और भैंस जैसे पशु अपने काम भोग में बड़ा उचित व्यवहार करते और अपने बर्ताव में ऋतुगामी और समझदार हैं यदि मनुष्य भी उसी प्रकार से बर्ताव करे, तो सभ्य समाज की सब कामुकता और कामोद्वेग का अन्त हो जाय।

आश्चर्यों का आश्चर्य! कामासक्त पुरुष को पशु कह कर मनुष्य कैसी भयंकर भूल करता है, क्योंकि पशु निस्संदेह मनुष्य से कम कामासक्त हैं। उनमें अनुचित कामविकार का चिह्न नहीं है। जब उन्हें सन्तानोत्पत्ति करना होता है, तभी वे मैथुन करते हैं। मनुष्य का यह हाल नहीं है, जो मनुष्य मतवाला नहीं है और धीर है, वह एक कामातुर मनुष्य की अपेक्षा पशुओं की तरह अधिक स्वाभाविक जीवन व्यतीत करता है। किसी कामासक्त मनुष्य को पशु नहीं कहना चाहिए, वह तो सभ्य मनुष्य है। यह तो सभ्यता की विशेषता है, न कि समाज की असभ्य-

अवस्था की। असभ्य लोग तो उचित और स्वाभाविक व्यवहार करते हैं। उनका हर एक कार्य नियत समय पर होता है। वेदान्त और समाजवाद के अनुसार जितना कम मतवालापन और जितनी अधिक प्रकृति की शान्त और धीर अवस्था की प्राप्ति होगी, उतनी ही कामोद्वेग की कमी होगी, किन्तु साथ ही साथ पति या पत्नी और पिता या पुत्र का-सा स्वत्वाधिकार वाला भाव भी न रहेगा।

"इस बच्चे या इस स्त्री अथवा इस बहन की फ़िक्र हमें करना है," इस भावना का निरन्तर बोझ मनुष्य को अपने अध्ययन या अपने परमात्मा को अनुभव करने में नहीं लगा रहने देता। समाजवाद या वेदान्त तुम्हारी छाती से यह बोझ हटा कर, तुम्हें स्वतंत्र कर देना चाहता है। जब तुम स्वतंत्रता से युक्त फंदों से मुक्त और सब प्रकार के बंधनों या पीड़ाओं से अयुक्त होते हो, तभी तुम अन्वेषण के सागर से लहराते हुए झण्डे के साथ और अनुसंधान की रंग-भूमि से सफलतापूर्वक बाहर निकल आते हो। और तभी हर समय तुम अपने को स्वच्छंद मानते हो, क्योंकि तुम सारे संसार को अपना घर जानते हो।

हमें केवल इतना ही करना है कि लोगों को यह दिखला दें कि उनके रोगों और बीमारियों की एक-मात्र दवा अधिकार जमाने की कल्पना को दूर कर देना है। एक बार इसे जन-समुदाय की भारी संख्या के समझ लेते ही समाजवाद सारे संसार में जंगली आग (दावानल) की तरह फैलेगा। यही वेदांतिक-समाजवाद उनके रोगों की एक-मात्र चिकित्सा है। एक बार जहाँ यह वेदांत समाजवाद दुनिया में सुन लिया गया, वहाँ सतयुग (Millenium) आ गया और उलटी दृष्टि तथा आस-पास की परिस्थिति के परिच्छिन्न ज्ञान से उत्पन्न होने

वाली आपत्तियाँ ग़ायब हो जायँगी। इस समाजवाद में बादशाहों, राष्ट्रपतियों और धर्माचार्यों की ज़रूरत न पड़ेगी और सेनाओं की आवश्यकता न रहेगी। फिर विश्वविद्यालयों की कभी कोई ज़रूरत न पड़ेगी, क्योंकि हर एक मनुष्य अपना विश्वविद्यालय आप ही होगा। हम ऐसे पुस्तकालय रक्खेंगे जिनमें हर एक मनुष्य आकर पढ़ सकेगा। सिवा छोटे बच्चों के और किसी के लिये अध्यापक न होंगे। डाक्टरों की ज़रूरत न पड़ेगी, क्योंकि वेदांत के उपदेशानुसार प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने से आप कभी बीमार नहीं पड़ सकते, आपको डाक्टर न चाहिए। लोग चाहे जो करेंगे, जहाँ जी चाहेगा घूमेंगे, अब की तरह मनुष्य को मनुष्य का डर न होगा, किन्तु भलाई करेंगे और वास्तव में हितकारी अध्ययनों, तत्त्वज्ञान और अध्यात्म के अनुसन्धानों में अपना समय लगावेंगे, एवं अपने देवत्व और परमात्मत्व का पूर्णतम अनुभव करते हुए उसे अपने आचरण में लायँगे।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

एकता

(ता० २२ सितम्बर १६०५ को गोरखपुर में दिया हुआ व्याख्यान)

ज़बान बोलती है, और कान सुनते हैं, ऐसा कहा करते हैं। परन्तु ज़बान में बोलने की शक्ति कहाँ से आई, और कान में सुनने की ताक़त कहाँ से आई ? एक ही रूह है, एक ही आत्मा है, जो कान और ज़बान को शक्ति देता है। कान को सुनने की शक्ति देता है, तो ज़बान को बोलने की शक्ति देता है। आप लोग चाहे मानो चाहे न मानो, किन्तु इस समय राम जो बोल रहा है, तो राम में बोलनेवाला और आप में सुननेवाला वास्तव में एक ही है। जैसे ज़बान और कान में एक ही शक्ति है, इसी तरह बोलनेवाले और सुननेवाले शरीर में एक ही शक्ति है। वही बोल रही है, वही सुन रही है।

एक ही गाता हूँ मैं अपने सुनाने के लिये ;
कोई समझे या न समझे, कुछ नहीं परवा मुझे।

यह व्याख्यान नहीं है, बल्कि जैसे कोई अपने मन में आप ही विचार करता है, उसी तरह बोला जा रहा है। और इसको आप इस भाव के साथ सुनिएगा मानो आप स्वयं अपने मन में विचार कर रहे हैं और आप ही व्याख्यान दे रहे हैं। व्याख्यान आरम्भ होने से पहिले आप इस ध्यान में लीन हो जायँ कि "इन समस्त देहों में एक ही वहदत है। परमेश्वर कह दो, ख़ुदा कह दो, आत्मा कह दो, एक ही वहदत है, जो इन

सारे शरीरों में इस तरह व्याप रहा है, जैसे माला के दानों में धागा पिरोया रहता है।"

एकता और वहदत हम सुनते चले आ रहे हैं, पुस्तकों में पढ़ते आये हैं, परन्तु फ़ायदा, आनन्द-लाभ तब हो सकता है कि जब हमको इसका नज़री सबूत मिले, जब प्रत्यक्ष सामने नज़र आने लग जाय। यह वहदत यानी एकता एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक नियम है। बल्कि सारी प्रकृति की जान वहदत है। जो राष्ट्र इस एकता को अपने आचरण में लाकर चले हैं, उनका बोलबाला होता है। जो मनुष्य इसे प्रत्यक्ष व्यवहार में लाता है, वही उन्नति को प्राप्त होता है। इस प्राकृतिक नियम को जो तोड़ता है, वह वैसा ही दुःख पावेगा, जैसे आकर्षण के नियम (Law of gravitation) को तोड़नेवाला पाता है। जो मनुष्य आग को छूता है, वह जले विना नहीं रह सकता। मकान पर से कूदनेवाले के हाथ-पैर टूटे विना नहीं बच सकते। इसी तरह जो इस प्राकृतिक नियम को तोड़ेगा, अपने आपको तोड़ेगा।

कहते हैं कि जिस समय अयोध्याजी से सीताजी को निकाला या बनवास दिया गया, तो अयोध्या की यह दशा हो गई कि सारी प्रजा को रोना पड़ गया, महाराजा का शरीर छूट गया, रानियाँ विधवा हो गईं, हाहाकार मच गया और वायवेला फैल गया। चौदह वर्ष तक सिंहासन ख़ाली रहा और मातम तथा रोना-धोना जारी रहा। और जिस समय श्रीसीताजी को वापस लाने के लिये श्रीरामचन्द्रजी खड़े हो गये, तो उस समय प्रकृति की सारी शक्तियाँ उनकी सेवा करने को हाथ जोड़कर उपस्थित हो गईं। वन के जीव-जन्तु, बन्दर और रीछ सब हाज़िर हो गये। पत्थर भी कहने लगे कि आज तो हम पानी में नहीं

डूबेंगे, आज हम सीताजी को वापस लाने में मददगार होंगे, और अपना (पानी में डूबने का) धर्म भूल जायँगे। पवन, जल क्या, किंतु सारे भूत सेवा करने को उद्यत हो गये। कहा जाता है कि नन्हीं-नन्हीं गिलहरियाँ भी अपनी शक्ति के अनुसार मुँह में रेत के परमाणु भर-भरकर समुद्र में डालने लगीं। देवी और देवता सब-के-सब सीताजी को वापस लाने के लिये कटिबद्ध हो गये। सारी सृष्टि सेविका बन गई। बन्दर भी, जो एक चंचल जाति से थे, एक व्यूहाकार सेना के समान लड़ने में काम देने को उद्यत हो गये।

प्यारे! अध्यात्म-विद्या में सीताजी से अभिप्राय है ब्रह्म-विद्या या अद्वैत वा एकता का ज्ञान। इसका तात्पर्य क्या है? जिस-जिस जगह पर एकता का नियम तोड़ा जाता है, वहाँ-वहाँ पर रोना-पीटना और दाँत पीसना आ जाता है। जहाँ पर एकता के नियम को व्यवहार में लाने की तैयारी होती है, वहाँ देवी-देवता सब मदद करने को हाज़िर हो जाते हैं। देवता बलि देते हैं उसको जो एकता के क़ानून का बर्तनेवाला होता है।

"सर्वेस्मै देवाः बलिमावहंति।"

आप पूछेंगे कि एकता क्या है? राम पुराने तरीक़े से अद्वैत पर नहीं बोलेगा। रूह की और आत्मा की बात एक ओर रखिए, शरीर की दृष्टि से अद्वैत देखिएगा और शरीर ही की नहीं बल्कि मन की दृष्टि से, बुद्धि की दृष्टि से अद्वैत ही अद्वैत, एकता ही एकता, फैल रही है। तत्त्ववेत्ता पाँच तबक़ों में मनुष्य के चोले का विभाग करते हैं, जिसे हमारे यहाँ पाँच कोष कहते हैं—(१) अन्नमय कोप, (२) प्राणमय कोष, (३) मनोमय कोष, (४) विज्ञानमय कोष, (५) आनन्दमय कोष। अर्थात् (१) यह शरीर जो अन्न से बनता है, जो अन्नाहार से बढ़ता है, और भोजन

से फलता-फूलता है, वह अन्नमय कोष कहलाता है। इसको जिस्मे-कसीफ़ या स्थूल शरीर, आलमे-नासूत या जाग्रत-अवस्था व इह-लोक कहते हैं, जिससे जीवन स्थिर है। (२) श्वास जो आता-जाता है, उसको लतीफ़ा-ए-हैवानी या प्राणमय कोष कहते हैं। (३) मनोमय कोष और (४) विज्ञानमय कोष, जिसका अभिप्राय है ख़्यालों का पुञ्ज या सोचने-विचारने की शक्ति, इत्यादि। प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष, इन तीनों को जिस्मे-लतीफ़ वा सूक्ष्म शरीर या (स्वप्नावस्था) आलमे-मलकूत कहते हैं। आलमे-बेहोशी या सुषुप्ति अवस्था को कारण शरीर (जबरूत या लतीफ़ा-ए-सिर्री या जिस्मे-इक़्र्ता) कहते हैं। इसके कारण स्वप्नावस्था में नाना प्रकार की चीज़ें देखते हैं और जाग्रतावस्था में तरह-तरह के ख़्याल दौड़ते हैं। (५) आनन्दमय कोष (कारण शरीर) है। यह वह अवस्था है, जो बचपन और बेहोशी में होती है। आपका आत्मा इन सब कोषों वा ढकनों से परे है। सब से ऊपर का ढकना अर्थात् स्थूल शरीर ओवरकोट के समान है। दूसरा ढकना सूक्ष्म शरीर अंडरकोट है। तीसरा ढकना कारण शरीर मानो सब से नीचे की क़मीज़ है। आपके आत्मा का विवेचन किया जाय, तो सब शरीरों में एक ही आत्मा निकलता है। यह एक आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा के विषय में कल विचार हो चुका है। यदि केवल बाह्य शरीर अर्थात् अन्नमय कोष को विचारपूर्वक देखा जाय, तो उसमें भी एकता ही एकता दिखाई देगी। हमारे स्थूल शरीर, (अन्नमय कोष) एक-दूसरे से ऐसा सम्बन्ध रखते हैं जैसे एक समुद्र में भिन्न-भिन्न तरंगें जो नाम-रूप के नद में अथवा स्थूल-तत्त्व के समुद्र में उठती हैं। वही जल जो अभी एक तरंग में था, थोड़ी देर में दूसरी और तीसरी तरंग में प्रकट होता है।

एक सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope) को लीजिए और उसी से अपने हाथ को देखिए। आपको मालूम होगा कि हाथ, पैर या शरीर के किसी अन्य भाग से छोटे-छोटे परमाणु बाहर निकल रहे हैं, परमाणुओं को एक प्रकार की आँधी-सी आ रही है, जो आपके हाथ या दूसरे अंग पर, जो आपके दृष्टिगोचर है, छा रही है। ये परमाणु प्रत्येक के शरीर से निकल रहे हैं। यही कारण है कि जब एक मनुष्य हैज़े या माहमारी में या स्पर्शजन्य रोग में ग्रसित होता है, तो समीपवालों को वह रोग लग जाता है। जो परमाणु बाहर निकल रहे हैं, वे वायु में फैल रहे हैं, वे दूसरे लोगों के शरीर में प्रवेश करते हैं। अगर ऐसा न होता, तो स्पर्शजन्य रोग का फैलना असंभव होता। साइंस ने बतलाया है कि यह गंध उन परमाणुओं से, जो कि बाहर निकलते हैं, प्रकट होती है। हमारे शास्त्र के शब्दों में गंध पृथिवी का गुण है, अर्थात् स्थूल अंगों पर निर्भर है। कोई-कोई शक्तियाँ किसी-किसी पशु में मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पाई जाती हैं। घ्राण-इन्द्रिय का संबंध सूँघने की नाड़ी से है। यह नाड़ी मनुष्य की अपेक्षा कुत्ते में अधिक विकसित रूप से है। कुत्ता अपने स्वामी या अपने घर का पता मीलों की दूरी से केवल गंध के सूँघ लेने से लगा लेता है। और ऐसा होना उसी दशा में सम्भव है जब मनुष्य के शरीर से परमाणु बाहर निकलते हों। ये परमाणु एक की देह से दूसरे और तीसरे की देह तक आते रहते हैं। यदि एक शरीर ठीक और नीरोग है, तो उससे अरोगता फैलेगी ; और रोगी है, तो रोग फैलेगा। पस जो मनुष्य अपनी अरोगता का ख़याल नहीं रखता, वह न केवल अपने को रोगी बनाकर दुःख पहुँचाता है, बल्कि दूसरे मनुष्यों, अपने समाज और राष्ट्र को भी ख़तरे में डाल

रहा है, और दुःख दे रहा है। इसलिये न केवल अपने लिये बल्कि समाज के लिये अपने शरीर को नीरोग रखना उचित है।

आप लोग जो श्वास ले रहे हैं, उससे ऑक्सीजन (Oxygen) भीतर जाती है, और उसके कारण शरीर के भीतर आग जलती रहती है, गरमी क़ायम रहती है, रुधिर का वेग एक समान बना रहता है। जिस समय यह वायु अन्दर गई, जल उठी, कारबन डायोक्साइड (carbon-dioxide) के रूप में बाहर लौट आई, और वह फिर पौदों का आहार हुई। पेड़ों ने उसको अपने में सोख लिया और अपने शरीर से उसे ऑक्सीजन के रूप में बाहर निकाला, और वह फिर मनुष्यों के प्राण बनाये रखने के काम में लाई गई। यह बात इस तथ्य को सिद्ध करती है कि न केवल परस्पर मनुष्यों के शरीरों में एकता है, बल्कि वनस्पति और मनुष्यों के तन में भी एकता-ही-एकता का डंका बज रहा है। इसके अतिरिक्त साइंस ऑफ़ बैक्ट्रियालोजी (Science of Bactriology) से सिद्ध है कि जिन कीड़ों के कारण पशुओं में बीमारी उत्पन्न होती है, उन्हीं कीड़ों के कारण प्रायः मनुष्यों में भी बीमारी होती है। यदि पशुओं और मनुष्यों की देहों में समानता न होती, तो यह तथ्य कब संभव हो सकता था। इसके अतिरिक्त वैद्यिकशास्त्र की सफलता भी भिन्न-भिन्न मनुष्यों के शरीर की एकता सिद्ध करती है, क्योंकि जो औषध एक मनुष्य को लाभकारी होती है, वही औषध दूसरे मनुष्य को भी उसी रोग में मुफ़ीद होती है। यदि एकता न होती, तो प्रत्येक मनुष्य के लिये एक भिन्न वैद्यकशास्त्र बनाने की जरूरत होती।

प्राणमयकोष की दृष्टि से देखिए। साइकालोजी (Psaychology) का प्रोफ़ेसर जेम्स लिखता है कि हमारे काम जितने होते हैं, वह सब सजेशन (Suggestion) से होते हैं। हमको मालूम

नहीं कि हम क्योंकर काम करते हैं। हमारे बहुतेरे काम अपने संकल्प और अपनी इच्छा से नहीं होते, बल्कि इस तरह होते हैं जैसे एक बन्दर औरों को करता हुआ देखकर स्वयं भी उसी तरह करने लग जाता है। इसी प्रकार अन्य पशुओं की दशा देखी गई है। पर्वतों पर व्यापार इस तरह से होता है कि बकरियों और भेड़ों पर थोड़ी-थोड़ी जिन्स लादकर लोग ले जाते हैं। गंगोत्री के रास्ते में भैरों घाटी के पड़ाव पर एक बड़ा ऊँचा लोहे का पुल था। उस पुल पर एक व्यापारी बहुत-सी भेड़ और बकरियों पर साँभर लादकर ले जाने लगा। जब बकरियाँ पुल पर गुजरने लगीं, एक बकरी दैवयोग से नदी में गिर पड़ी, दूसरी भी उसकी देखा-देखी गिरी, तीसरी भी गिरी। माल के मालिक ने हरचन्द रोकना चाहा, मगर वह न रुकीं, एक के पीछे एक गिरती चली गई और अन्ततः सब-की-सब गिर गईं और नष्ट हो गईं। एक के ख़याल का प्रभाव दूसरे के ख़याल पर ख़्वाहमख़्वाह होता है। इस पर यदि विचारा जाय कि एक के ख़याल का प्रभाव दूसरे पर होने का क्या कारण है, तो मालूम होगा कि सूक्ष्म शरीर के वे परमाणु, जिनका नाम ख़याल है, भिन्न-भिन्न शरीरों के एक समान हैं। और इस कारण सूक्ष्म शरीरों में एकता मौजूद है। यह बात उसी हालत में सम्भव है, जब आपके भावों में एकता हो।

जिन लोगों ने साइंस देखा है, वे समझ सकते हैं कि इनर्जी (Energy) अर्थात् शक्ति किसी प्रकार भी नष्ट नहीं हो सकती। यह सम्भव है कि वह एक रूप से दूसरे रूप में बदल जाय। फ्रांस में जब रेन ऑफ़ टैरर (Reign of terror भय का समय) आया, तो सब लोगों के चित्त में यह ख़याल था

कि यह सूरत पलटा खाय, यह हालत बदले। इस बग़ावत को, इस अराजकता को, उचित प्रबन्ध का रूप प्राप्त हो। मगर सर्व-साधारण में कोई ऐसा नहीं था जो खड़ा होकर सब लोगों को प्रबन्ध के रूप में ले आवे। प्रत्येक स्त्री-पुरुष की यह इच्छा हो रही थी, मगर व्यक्ति-व्यक्ति करके कोई एक इस योग्य नहीं था कि कुछ कर सके। आख़िरकार एक मनुष्य उन्हीं साधारण लोगों (प्लीबियन रैंक Plebeian) में से निकल आया। नेपोलियन जिस समय वैभव को प्राप्त हुआ, उस समय उसकी अवस्था यह थी कि हज़ार आदमी उसके पकड़ने के लिये गये, वह अकेला उन सबके आगे खड़ा हो गया, और ऊँची आवाज़ से बोला—"अवांट (avaunt)" अर्थात् "खड़े हो जाओ।" उन हज़ारों के दिलों में ऐसा भय छा गया कि सब खड़े हो गये। यह वास्तव में उस अकेले की शक्ति नहीं थी, बल्कि हज़ारों मनुष्यों के ख़्यालात की शक्ति का पुञ्ज था, जो उसके दिल में मौजूद था।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

WANTED

Reformers,

Not of others but of themselves,

Who have won,

Not University distinction,

But victory over the local self:

Age : the youth of divine joy,

Salary : Godhead.

Apply sharp,

With no begging soliciations

But commanding decision

To the Director of the Universe,

Your Own Self.

Om ! Om ! Om ! Om !

अभी छपकर आई हैं

१. भगवान् श्रीरामकृष्ण परमहंस का जीवन-चरित, हिंदी में। यह पुस्तक अब तक उनकी जीवनी के संबंध में संसार की अनेक भाषाओं में छपी हुई जीवनियों के आधार पर लिखी गई है। मूल्य पहला भाग १।=) ; दूसरा भाग १॥)

२. परमहंस श्रीरामकृष्ण के सुप्रसिद्ध शिष्य स्वामी विवेकानंद जी की कुछ बंगाली और अँगरेज़ी पुस्तकों के अनुवाद—

परिव्राजक ।=) ; प्रेमयोग ॥) ;
आत्मानुभूति ॥) ; प्राच्य और पाश्चात्य ॥)

३. साधारण धर्म—(मानव-जीवन का कोष) उर्दू में ।॥)

४. राम का व्यावहारिक वेदांत—हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी में। मूल्य प्रत्येक का एक पैसा। १) सैकड़ा

५. सतयुगी प्रार्थना—जिनका प्रत्येक परिवार में प्रतिदिन किया जाना उचित है। हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी में। मूल्य प्रत्येक का केवल एक पैसा। १) सैकड़ा

६. स्वामी राम, वैरियस ऐस्पेक्टस् ऑफ़ हिज़ लाइफ़—अर्थात् स्वामी राम के जीवन पर बड़े-बड़े विद्वानों और प्रोफ़ेसरों के भिन्न-भिन्न दृष्टि से लिखे हुए लेख। सजिल्द अँगरेज़ी में। मूल्य १)

७. नारायण-चरित्र—प्रथम भाग (उर्दू में)। इसमें रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग के संस्थापक श्रीमन्नारायण स्वामीजी की